नूपुर - 2016

स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज के
123वें जन्मोत्सव पर
स्मारिका-रूप में कतिपय 'नूपुर'

श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट
(श्री म ट्रस्ट)

कार्यालय : 579, सैक्टर 18-बी, चण्डीगढ़ 160 018
फोन 0172-2724460

मन्दिर : श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत पीठ (श्री पीठ)
सैक्टर 19-डी, चण्डीगढ़ 160019

website : http://www.kathamrita.org
email : srimatrust@yahoo.com

आवरण चित्र :

गीता को सर्वशास्त्रों का सार माना जाता है। ठाकुर सर्वशास्त्रों की सार गीता का सार बता रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— ...गीता पढ़ने से क्या होता है ?— दस बार 'गीता, गीता' बोलने से जो होता है। 'गीता, गीता' बोलते-बोलते 'त्यागी' हो जाता है। संसार में कामिनी-काञ्चन में से जिसकी आसक्ति का त्याग हो गया है, जो ईश्वर में सोलह आना भक्ति दे सका है, वही गीता का मर्म समझा है। गीता की समस्त पुस्तक पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। 'त्यागी, त्यागी' कह सकने पर ही हो जाता है।

डॉक्टर— 'त्यागी' कहो तो एक 'य' वर्ण लाना पड़ता है।

मणि— किन्तु वह 'य' वर्ण बिना लाए भी चलता है, नवद्वीप गोस्वामी ने ठाकुर से कहा था। ठाकुर पेनेटी में महोत्सव देखने गए थे, वहाँ पर नवद्वीप गोस्वामी से यही गीता की बात कही थी। तब गोस्वामी ने कहा, तग् धातु घञ् से 'ताग' हो जाता है, उसके पीछे इन् प्रत्यय लगाने से तागी हो जाता है, त्यागी और तागी का अर्थ एक है।

—कथामृत, भाग-3, 21.3,संस्करण-2013, पृ०326

© श्री म ट्रस्ट

सम्पादन : — डॉ० (श्रीमती) निर्मल मित्तल
डॉ० नौबतराम भारद्वाज

प्रकाशन : प्रेसीडेंट
श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट (श्री म ट्रस्ट)
579, सैक्टर 18-बी, चण्डीगढ़ 160 018
फोन - 0172-2724460

मुद्रण : प्रिंट लैण्ड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006

कथामृतकार श्री 'म' की सेवक-सन्तान
स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज को
जो
श्री म दर्शन-ग्रन्थमाला के माध्यम से
श्रीरामकृष्ण-कथा को,
कथामृत में कही-अनकही ठाकुर-वाणी को
हम तक लाए।

'नूपुर' नाम क्यों ?

ठाकुर दक्षिणेश्वर में नरेन्द्र, भवनाथ आदि भक्तों के संग में हैं। ठाकुर गाना गा रहे हैं—

बोल रे श्रीदुर्गा नाम।
(ओ रे आमार आमार आमार मन रे)।
. . .
यदि बोलो छाड़ो-छाड़ो मा, आमि ना छाड़िबो।
बाजन **नूपुर** होये मा तोर चरणे बाजिबो॥*

दीदी जी (श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता) कहा करतीं कि ठाकुर-वाणी का अक्षर-अक्षर है 'नूपुर'। इन 'नूपुरों' की झंकार से सब पाठक ठाकुर का शुद्ध प्यार पाएँ, इस अभिलाषा से ही उन्होंने अपने गुरु महाराज के 101वें जन्म-दिन पर सन् 1994 में स्मारिका-रूप में वार्षिक पत्रिका का प्रारम्भ '**नूपुर**' नाम से किया था। उनका विश्वास था कि ठाकुर-वाणी के पठन-श्रवण-मनन और पालन से व्यक्ति स्वयं बन जाता है माँ के चरणों का 'नूपुर'।

---

* ओ मेरे मन, तू दुर्गा-दुर्गा नाम बोल। ... यदि कहो छोड़, छोड़, किन्तु मैं नहीं छोड़ूँगा। हे माँ, मैं तेरे चरणों का **नूपुर** बनकर बजूँगा।]

— कथामृत भाग II, सप्तदश खण्ड, द्वितीय परिच्छेद

अनुक्रमणिका

निवेदन	...	7
1 श्री 'म' द्वारा गीता-व्याख्या	...	11
2 श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता और गीता	...	19
नूपुर तेरे चरणों का	...	23
3 स्वामी नित्यात्मानन्द जी की गीता शिक्षा	...	25
4 क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ...	...	33
5 Holy Mother Shri Sarada Devi – An illustration of Karmayoga	...	37
6 श्री श्री माँ का कर्मयोग	...	43
7 धर्म संस्थापनार्थाय...	...	49
8 Thakur and the Gita	...	57
9 Shri Ramakrishna on Bhagavad Gita	...	66
10 How I co-relate with Shri Bhagvad Gita	...	75
11 विविधा—		
1. The Two Pillars	...	83
2. From Kathamrita to Sri Ma Trust	...	90
3. श्री म ट्रस्ट— परिचय, उद्देश्य और गतिविधियाँ	...	95

श्री 'म' ट्रस्ट

श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत के प्रणेता श्री महेन्द्रनाथ गुप्त, बाद में मास्टर महाशय वा श्री म (M.) के नाम से विख्यात हुए।

इन्हीं श्री म के अन्तरंग शिष्य थे स्वामी नित्यात्मानन्द जो 'श्री म दर्शन' ग्रन्थमाला के प्रणेता हैं। और वे ही हैं श्रीरामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट (श्री म ट्रस्ट) के संस्थापक।

अपने जीवन में ठाकुर-वाणी का अक्षरश: पालन करने वाले श्री म के पास दीर्घकाल तक रहकर स्वामी नित्यात्मानन्द जी को विश्वास हो गया था कि जगत् के सकल काम-काज करते हुए भी मन से ईश्वर के साथ रहा जा सकता है और यही है शाश्वत शान्ति तथा परमानन्द का सहज, सरल उपाय। परमानन्द की प्राप्ति ही है मनुष्य-जीवन का एकमात्र उद्देश्य। इसी परमानन्द की प्राप्ति जन-जन को हो, इस उद्देश्य से स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज ने अपने प्रथम गुरु श्री म की स्मृति में 12 दिसम्बर सन् 1967 को श्री म ट्रस्ट (श्रीरामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट) को रोहतक में रजिस्टर करा दिया था जो बाद में चण्डीगढ़ ले आया गया। तब से लेकर आज तक ठाकुर-कृपा से ठाकुर-वाणी के प्रचार-प्रसार का कार्य निरन्तर चल रहा है और आगे बढ़ रहा है।

श्री म ट्रस्ट से जुड़े ठाकुर-भक्तों/सेवकों पर ठाकुर इसी तरह अपना शुद्ध प्यार बनाए रखें, यही उनके श्री चरणों में प्रार्थना है।

—प्रेसिडेंट, श्री म ट्रस्ट

निवेदन

यह संसार हमारी कर्मभूमि है। संसार में आए हैं तो कर्म करना ही होगा। अपनी-अपनी योग्यता, अपनी-अपनी सोच-समझ के अनुसार सभी कर्म करते भी हैं। पर कर्म करते-करते अनेक बार बुद्धि में, मन में द्वन्द्व उपस्थित हो जाता है। द्वन्द्व माने निश्चय नहीं हो पाता कि अमुक कार्य करूँ या न करूँ। कई बार सामने आ पड़ी परिस्थिति को देखकर व्यक्ति घबरा जाता है।

अर्जुन भी युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए अपने ही बन्धु-बान्धवों, गुरुजनों को सामने देखकर काँप जाता है। श्री कृष्ण से कहता है—

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते॥ [गीता : 1/28-29]

[हे कृष्ण! युद्धक्षेत्र में उपस्थित युद्ध के इच्छुक इन स्वजनों को देखकर मेरे अङ्ग शिथिल हुए जा रहे हैं और मुख सूखा जा रहा है तथा मेरे शरीर में कम्प एवं रोमाञ्च हो रहा है।]

अर्जुन आगे कहता है— मैं तो यहाँ खड़ा भी नहीं हो पा रहा और

मेरा मन भ्रमित-सा हो रहा है, माने मेरा माथा घूम रहा है।

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ [गीता : 1/30]

[गाण्डीव हाथ से गिर रहा है, त्वचा भी जल रही है और मन भ्रमित-सा हो रहा है, मैं खड़ा भी नहीं रह पा रहा हूँ।]

और फिर वह अपना निश्चय ही सुना देता है। कह देता है— ''मैं युद्ध नहीं करूँगा''— न योत्स्ये [गीता : 1/9]

किंकर्त्तव्यविमूढ़ (क्या करूँ, क्या न करूँ, इस समय मेरा क्या कर्त्तव्य है, ऐसा सोच पाने की स्थिति जिसकी नहीं है।) हुआ अर्जुन श्री कृष्ण से कहता है—

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे [गीता : 2/7]

(मेरे लिए जो श्रेयस्कर है, कल्याणकारी है, करणीय है, वह निश्चित करके आप मुझे बताएँ।)

प्रायः हम सभी का अनुभव है कि ऐसी दशा हमारी भी हो जाती है जीवन में कभी-कभी। मन परेशान हो जाता है और कर्तव्य-मार्ग सूझता नहीं। तब हमें भी होता है कि कोई तो आकर बताए 'मैं क्या करूँ', कोई तो मुझे मेरी इस स्थिति से बाहर निकाले, मेरा मार्गदर्शन करे। और ऐसी स्थिति में मार्गदर्शन किसी सद्गुरु से ही मिल सकता है।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को तब (उस युग में) जो बताया, जो समझाया, उसकी जिज्ञासाओं के उत्तर दिए, वह गीता-ज्ञान आज भी हम सभी को उपलब्ध है। वह ज्ञान आज भी हमारा मार्गदर्शन करता है, कर सकता है।

पर हम और भी अधिक भाग्यशाली हैं कि आज के इस युग में ठाकुर श्रीरामकृष्ण-प्रदत्त वही ज्ञान और भी सरलतर शब्दों में, आज के मनुष्य की बुद्धि में जो सरलता से आ सके— ऐसा ज्ञान उनकी वाणी के रूप में हमारे पास उपलब्ध

है, श्री म रचित 'कथामृत' के माध्यम से। उस युग में जो भूमिका श्रीकृष्ण की रही, आज वही भूमिका ठाकुर निभा रहे हैं। जैसे श्रीकृष्ण ने अर्जुन की सभी जिज्ञासाओं का समाधान किया, ठीक वैसे ही ठाकुर श्रीरामकृष्ण हमारी प्रत्येक जिज्ञासा का समाधान कर रहे हैं। मानवी-मन में आने वाली ऐसी कोई जिज्ञासा नहीं, मनुष्य-जीवन में आ सकने वाली ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका समाधान उन्होंने न दिया हो। श्री म लिखित कथामृत में वर्णित ठाकुर-वाणी के माध्यम से हम सभी इस समस्त ज्ञान का लाभ उठा सकते हैं।

इस बार 'नूपुर' का विषय रहा— श्रीमद्भगवद्गीता (गीता) के आलोक में ठाकुर श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द, श्री म आदि ठाकुर-पार्षदों; आगे श्री म की शिष्य-सन्तान स्वामी नित्यात्मानन्द एवं उनकी शिष्या श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के जीवन व वाणी का किञ्चित् अध्ययन। यह विषय है सागर की भाँति गहरा और इस सागर में केवल रत्न हैं, निश्चित। भक्त-लेखकों ने उसी में से कुछेक रत्नों को यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। अन्य कुछ लेख 'विविधा' के अन्तर्गत रखे गए हैं।

इस 'नूपुर' में जिन्होंने अपना लेख दिया है, वे सभी श्री 'म ट्रस्ट' से जुड़े हैं। अबकी बार श्री प्रदीप दासगुप्ता के कहने पर उनके मित्र दादा श्री अमल गुप्ता तथा श्री जयदीप दासगुप्ता ने भी लेख भेजे हैं। ठाकुर-माँ-स्वामीजी के भक्त तो वे हैं ही। अपने लेखों के माध्यम से वे 'श्री म ट्रस्ट' से भी जुड़ गए हैं। उनका विशेष धन्यवाद।

सुझाव/प्रतिक्रियाएँ सादर आमन्त्रित हैं।

जय श्रीकृष्ण!

जय श्रीरामकृष्ण!

— डॉ० (श्रीमती) निर्मल मित्तल

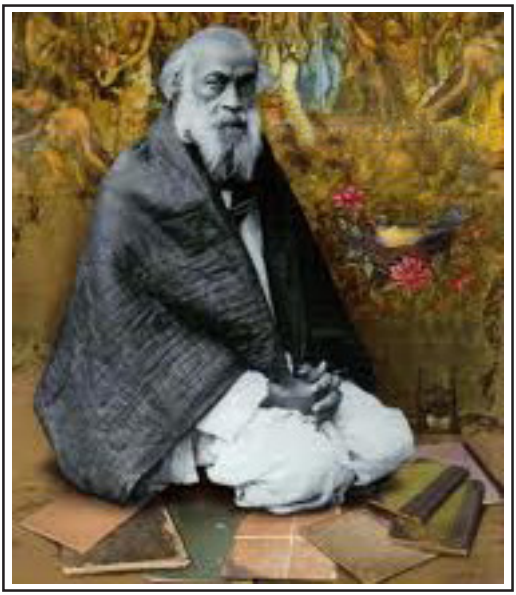

श्री म (मास्टर महाशय)

- पूरा नाम : श्री महेन्द्रनाथ गुप्त
- जन्म : शुक्रवार, नाग पञ्चमी, 31वाँ आषाढ़, 14 जुलाई, 1854 ईसवी।
- स्थान : कोलकता में शिमुलिया मोहल्ले की शिवनारायण दास लेन।
- माता–पिता : श्रीमती स्वर्णमयी देवी और श्री मधुसूदन गुप्त– वैद्य ब्राह्मण वंश।
- भाई–बहन : 4 भाइयों और 4 बहनों में तीसरी सन्तान।
- विवाह : सन् 1873 में श्रीमती निकुञ्ज देवी के साथ।
- शिक्षा :
  - सन् 1867 में आठवीं कक्षा से डायरी लेखन।
  - हेयर स्कूल से दसवीं की परीक्षा में द्वितीय स्थान।
  - गणित का एक पेपर न दे सकने पर भी एफ.ए. में 5वाँ स्थान।
  - सन् 1875 में प्रेज़िडैंसी कॉलेज से बी.ए. में तृतीय स्थान।
  - पूर्वी और पश्चिमी विद्याओं में निपुणता।
- गुरु : श्रीरामकृष्ण परमहंस
- गुरु–लाभ : 26 फरवरी, सन् 1882 को रविवार के दिन।
- महासमाधि : शनिवार, 4 जून, सन् 1932 ईसवी को प्रातः 5.30 बजे।

■

1

श्री 'म' द्वारा गीता-व्याख्या

— सन्दीप नांगिया

श्री म अपने पास आने वाले भक्तों को ठाकुर-वाणी के अतिरिक्त गीता, चण्डी, पुराण, भागवत आदि के गूढ़ तत्व बताया/समझाया करते। ये सभी बातें उनके अन्तरंग शिष्य स्वामी नित्यात्मानन्द द्वारा लिखित 'श्री म दर्शन' के 16 भागों में वर्णित हैं।

इस लेख में श्री म द्वारा कृत गीता-व्याख्या के कुछ अंश प्रस्तुत हैं।

श्री म पञ्चदश अध्याय पाठ करके व्याख्या करते हुए कह रहे हैं—

श्री म— ठाकुर बोलते, 'ब्रह्म-माया-जीव-जगत्'। श्री कृष्ण बोले, अश्वत्थ-क्षर-अक्षर-पुरुषोत्तम। अर्जुन का मन देह में है। आत्मीय कुटुम्बियों की देह विनाश हो जाएगी इस कारण शोक, मोह से ऊपर उठाते हैं, देह से ब्रह्म में। बहिर्मुखीन दृष्टि अर्जुन की; जगत् के ऊपर, स्थूल देह के ऊपर उठाकर प्रथम रखा जीवत्व में --- ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः। [गीता : 15/7] वहाँ से कूटस्थ चैतन्य में, अक्षर में, मायोपहित ब्रह्म में, तदनन्तर निरुपाधिक ब्रह्म में। उनको ही 'पुरुषोत्तम' कहा है।

''इसी पुरुषोत्तम को जान सकने पर यह जीव ही शिव हो जाता है। इसीलिए अर्जुन के नेत्रों के सम्मुख यह आदर्श रखा है concrete (स्थूल)

रूप से। गुणातीत स्थितप्रज्ञ पुरुष के लक्षण बोले श्रीकृष्ण-

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ [गीता : 15/5]

''जभी तो भरोसा होगा अर्जुन को। श्रीकृष्ण ने निज अवस्था प्रकारान्तर में बताई। निज प्रच्छन्न रहे। अर्जुन किन्तु तब भी पकड़ नहीं सके। एक बार थोड़ा-थोड़ा समझ पाते हैं, और फिर भूल जाते हैं। यही 'आलो-आंधार' का खेल चलता है। इससे ही काज होता है कि ना। बिल्कुल अज्ञ के द्वारा कुछ होता नहीं, और फिर अतिविज्ञ के द्वारा भी होता नहीं। ये सब ही उनकी महामाया का कार्य। इसके उपरान्त एक अवस्था हुई अर्जुन की। तब बोले, स्थितोऽस्मि गतसन्देहः। कुछ समय के लिए निश्चयरूप से समझ पाए थे। उसी समय ही कार्य करवा लिया। इसके तनिक पूर्व ही श्री कृष्ण बोले थे, मामेकं शरणं व्रज। ठीक-ठीक शरणागत होने से ही काज हो गया।

''श्रीकृष्ण का ही जीवन देखो ना। उनको मान भी नहीं, मोह भी नहीं। दुर्योधनादि इतना अपमान करते हैं तब भी खुदगरज होकर जाते हैं शांति स्थापना के लिए। अपने पुत्र, पौत्रादि झगड़ा करके मरते हैं। वे साक्षीवत् दण्डायमान सब देखते हैं। मनुष्य जैसों के संग रहता है, उसका रंग लग जाता है। इनका वैसा नहीं। जहाँ पर भी जाते हैं सब ही समझते हैं हमारे ही जन हैं ये। किन्तु किसी के भी नहीं वे। वृन्दावन में गोपियाँ सोचती हैं, हमारे कान्त श्रीकृष्ण। किन्तु उन्हें छोड़कर मथुरा चले गए, फिर द्वारका, कुरुक्षेत्र में कितना ही क्या-क्या किया, किन्तु वे निर्लिप्त।

'' 'अध्यात्मनित्याः' अर्थात् अपने स्वरूप का ज्ञान रहता है सर्वदा। श्रीकृष्ण में पूर्ण रूप से वह देखने को मिलता है। नहीं तो युद्ध क्षेत्र में सर्वशास्त्र-सार गीता बोल सकते हैं? अपने लिए कोई कामना नहीं। एक दिन के लिए भी राजा हुए नहीं निज। किन्तु दूसरों को राजा बनाया है। सुखदुःख में फिर समान। सुखदुःख होता नहीं, वैसा नहीं है। मनुष्य का शरीर जब लिया है, तब सब कुछ ही था। किन्तु उससे अभिभूत नहीं। पाण्डवों के कोर्ट में जो भाव, विदुर की कुटीर में भी वही भाव। कुरुक्षेत्र के श्मशान में और राजसूय

यज्ञ में एक ही भाव। जीवत्व माने the doubting self (संशयात्मा)। उनके दर्शन के पश्चात् — माने beyond all doubts- संशयातीत। उनको ही 'स्थितप्रज्ञ' 'ब्राह्मी स्थितिः' 'गुणातीत' कहते हैं।

''ठाकुर की यही अवस्था - मान, मोह बोध नहीं। कितनी कटु बातें बोलते हैं कालीबाड़ी के लोग, किन्तु भ्रूक्षेप नहीं। कैसे उनका भला हो, उल्टा वही करते। 'नन्दन बागान' के ब्राह्मसमाज में आदर हुआ नहीं। किन्तु स्वयं माँग कर खाकर आए। मोह भी था नहीं। रामलाल हर को कितना कष्ट खाने-पहनने का। किन्तु जगन्माता को एक दिन के लिए भी कहा नहीं उसे दूर करने के लिये। अक्षय के लिए शोक किया था। और फिर अधरसेन, केशव सेन इनके शरीर त्याग होने पर रोये थे। किन्तु उन्हीं अल्प कुछ दिनों के लिये। तत्पश्चात् वह बात ही फिर उठाई ही नहीं। शरीर धारण किया था कि ना, जभी भक्तों के लिए यह शोक।

'' 'जितसंगदोषाः' - जहाँ पर ठाकुर जाते हैं, सब ही सोचते हैं हमारा ही जन है। ब्राह्मसमाज के जन बोलते हैं, परमहंस महाशय तो हमारा ही लोग है। कर्ताभजा समझते उनका ही लोग है। देश में गए, ग्राम के लोग सोचते हैं हमारा गदाई आया है, अब गृहस्थ धर्म करवाएँगे। स्त्रियाँ सोचतीं, ये हमारा ही एक जन है। माथुरबाबू के गृह में अन्दर स्त्रियों के महल में स्त्रियों के संग में रहते। तब मधुर भाव में साधन चला था। स्त्री की पोशाक, चालचलन सब उनकी भांति। (सहास्य) कहते, स्त्रियों की भांति इस अंगुली (तर्जनी) से कोयले के चूर्ण से दाँत माँजता था। सब के संग रहते हैं, किन्तु अन्तर में किसी के संग नहीं। केवल माँ के संग हैं -- सर्वदा माँ, माँ। नित्य आहार-विहार, शरीर-रक्षा। ये सब विषय भी देखती हैं माँ ही। माँ ही सब करती हैं। जभी कोई भी कामना नहीं अपने लिए। किन्तु भक्तों के लिए, दुःखी-दरिद्र के लिए, जगत् के लोगों के लिए भावना करते हैं।

''माथुर बाबू की जमींदारी लिखकर देने की प्रार्थना का प्रत्याख्यान किया। मारवाड़ी का दस हजार रुपया लिया नहीं। शरीर के सुखदुःख का बोध भी नहीं। मन तो सर्वदा मग्न ईश्वर में। माथुरबाबू के इतने प्यार में भी उनके अन्तर में और मुख में 'माँ-माँ' और फिर उनका शरीर जाने पर जब सेवा

मिलने में बड़ा दु:ख होता था, तब भी वही 'माँ-माँ'।

''श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो कहा था, ठाकुर भी नरेन्द्र को वही बोले। बाप के हठात् मर जाने पर नरेन्द्र को बड़ा कष्ट होता। मन बड़ा ही उद्विग्न, घर पैसा नहीं। माँ-भाई-बहनों के लिए आहार नहीं। इतने कष्ट में भी मन को नीचे उतरने नहीं दिया। अर्जुन की न्यायीं नरेन्द्र ने माँ काली से माँगा ज्ञान, भक्ति, विवेक-वैराग्य। रुपया, पैसा, आहार इत्यादि माँग सके नहीं। ठाकुर की बात से माँगने गए यह सब, किन्तु माँ के मन्दिर में जाकर माँगी ज्ञानभक्ति। तीन बार भेजा। तीनों बार ही माँगा वही ज्ञान, भक्ति, विवेक, वैराग्य। अन्न-वस्त्र की बात भूल गए। मन को जो ठाकुर ने ऊपर चढ़ा रखा है। ठाकुर तब बोले, मोटा भात, मोटे कपड़े की व्यवस्था माँ ने कर रखी है। इसके लिए चिन्ता मत करो। तुम आत्मस्थ हो जाओ।'

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जिन पुरुषोतम की बात कही श्री कृष्ण रूप में, अब वे नररूप में सम्मुख उपस्थित हैं। अर्जुन बूझ नहीं सके जब तक उन्होंने ही नहीं बुझाया। समझ में आने वाला ही जो नहीं है। यही पुरुषोत्तम ही अब ठाकुर श्री रामकृष्ण! बोले थे, एक दिन सच्चिदानन्द इसके (निज के) भीतर से बाहर आकर बोले— मैं ही युग-युग में अवतार लेता हूँ।

कौन बूझ सकता है यह प्रहेलिका? जिसको बुझाते हैं वही बूझता है।

[श्री म दर्शन, भाग-4, पृष्ठ 133-137]

कर्म क्यों और कैसे किया जाए, इसकी व्याख्या करते हुए श्री म कह रहे हैं :

''संन्यास लेकर बहुत लोग कार्य करते हैं। क्यों? कार्य बाकी जो है। गीता में है -

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शम: कारणमुच्यते।। [गीता : 6/3]

''जो योगी होना चाहता है उसे कर्म का प्रयोजन है। निष्काम कर्म के बिना चित्त शुद्ध नहीं होता। तभी मन भी स्थिर नहीं होता। इसलिये निष्काम

कर्म आवश्यक है। चित्त की अशुद्धि क्या है? वासना। नाना वासनाएँ मन को इधर-उधर खींचकर ले जाती हैं। निष्काम कर्म करने पर चित्त की वासना से प्रसूत समस्त वृत्तियों की चंचलता का निरोध हो जाता है। पतंजलि ने सूत्र बनाया है, 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' (चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है)।

''अधिकांश साधक ही आरुरुक्ष होते हैं अत्यन्त अल्प लोग योगारूढ होते हैं। योगारूढ का प्रायः कर्म नहीं होता। केवल उन्हें ही लेकर रहना।''

श्री म *(पूर्व की ओर के घर की छत पर कबूतर-कबूतरी को देखकर, भक्तों के प्रति)*— यह देखो, ये केवल आहार की चेष्टा में हैं — कहाँ पर आहार मिलेगा। मनुष्य किन्तु वैसा नहीं है। उसका और भी एक कुछ है—ईश्वर को पुकारना।

''किसी के लिये भी क्यों न तुम उन्हें पुकारो, तुम उदार हो, महत् हो। गीता में भगवान् ने यही प्रतिज्ञा की है। कहते हैं :

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥ [गीता : 7/16]

''जो पुण्यवान् 'सुकृतिनो' होते हैं, वे उनको पुकारते हैं। उनकी चार श्रेणियाँ हैं—आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। इसी के पश्चात् ही कहते हैं, 'उदाराः सर्वे एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।' [गीता : 7/18] सब ही सुकृतिवान्, उदार होने पर भी इनके मध्य ज्ञानी श्रेष्ठ है। क्यों? क्योंकि, भगवान् कहते हैं, ज्ञानी मेरी आत्मा है - ज्ञानी मेरा अपना स्वरूप है। इसीलिये ज्ञानी की सेवा, साधु की सेवा भगवान् की ही सेवा है।'

''ज्ञानी केवल मुझ को चाहता है और कुछ नहीं माँगता-भगवान् कहते हैं। तो फिर दूसरी वस्तुओं के लिए उनसे नहीं कहेगा तो किससे कहेगा? वे तो सब के मालिक हैं! कोई पुकारता है, विपद दूर करो, कोई चित्त के संशय मिटा देने के लिये पुकारता है। कोई पुकारता है अर्थ (धन) के लिये, अर्थात् भोग्य वस्तु के लिये। ये सकाम भक्त हैं। क्रमशः निष्काम होंगे। तब ज्ञानी होंगे। यह ज्ञानी ही उनकी आत्मा है, माने रूप है। ज्ञानी माने, जो भगवान् को चाहते हैं और कुछ नहीं चाहते। धन, मान, यश, पुत्र, राज्य कुछ नहीं। केवल

भगवान को चाहते हैं, जैसे नचिकेता।

[श्री म दर्शन, भाग-15, पृष्ठ 275-276]

श्री म कुछ सोचते हैं और फिर बातें करते हैं।

...

''उसके लिये है कर्मयोग, जिसका मन स्थिर नहीं हुआ है। जिसका मन स्थिर हो गया है, उसके लिये ध्यान योग है। और फिर कर्म करने का भी कौशल बता रहे हैं 'मामनुस्मर युध्य च'। [गीता : 8/7] केवल युद्ध की बात तो नहीं कही। मामनुस्मर, मुझे स्मरण कर सदा। पहले मेरा स्मरण, तत्पश्चात् युद्ध, कर्म। इसे कहते हैं कर्मयोग - कर्म द्वारा उनके संग में युक्त हो जाना। प्रथम स्मरण, तत्पश्चात् कर्म, उसके पश्चात् फिर दुबारा स्मरण और समर्पण। आगे, पीछे उनका स्मरण - बीच में कर्म। इसी का नाम है कर्मयोग।''

[श्री म दर्शन, भाग-4, पृष्ठ 328]

स्वामी अजयानन्द - कर्म, कोई कहता है - करो, कोई कहता है न करो, कौन सा पालनीय है?

श्री म - जब तक शरीर है, कर्म तो करना ही पड़ेगा - 'न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषत:'। [गीता : 18/11]। एकदम general statement (साधारण उक्ति)। बिना किये उपाय नहीं है। तब भी गुरु के आदेशानुसार करना उचित है।

''एक कर्म तो होता है preparatory (प्राथमिक)। इससे चित्त शुद्ध होकर ज्ञानप्राप्ति होती है। और एक प्रकार का कर्म है— प्रत्यादिष्ट कर्म। भगवान्-लाभ के पश्चात् यदि कोई कर्म करता है, तो फिर वह होता है - प्रत्यादिष्ट।

''Ideal (आदर्श) है—प्रथम भगवान् लाभ करना। तत्पश्चात् उनका आदेश यदि कोई पाए तो फिर कर्म कर सकता है। और वह न हो तो निष्काम कर्म करना चाहिए। इससे चित्तशुद्धि हो जाने पर तब फिर उनका लाभ हो

जाता है।'

''निष्काम कर्म है तो चाहे बड़ा कठिन। फिर भी इतना-सा ही कर सकने पर भी उससे ही कार्य हो जाता है-'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्' '' (इस धर्म का अल्पमात्र भी महद् भय से रक्षा करता है। [गीता : 2/40]

''प्रकाशोन्मुख जो कर्म प्रकृति में है, उसे ही गुरु से कह कर करना चाहिए। नूतन झंझट में जड़ित नहीं होना।''

''प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति' [गीता : 18/59] प्रकृति अवश करके तुम्हें कर्म में लगाएगी। भगवान् ने गीता में स्पष्ट रूप से यही बात कही है। किन्तु नूतन कर्म में जड़ित मत होना।''

स्वामी अजयानन्द— बहुत जन ही नया कार्य करने के लिए— बढ़ाने के लिए कहते हैं।

श्री म *(विरक्ति सहित)*— वे तो कहेंगे ही। किन्तु हम उनकी वाणी कहते हैं। अन्य एक अवतार की life (जीवनी) देखने पर यह अच्छी तरह समझ में आ जाता है। भाष्यकार का काम नहीं है यह। यह बात अति स्पष्ट रूप से गीता में है - 'धूमेनाव्रियते वह्निः [गीता : 3/38] कर्म से आत्मा ढक जाती है। जहाँ पर ही कर्म है वहाँ पर ही धुआँ है। वहाँ पर ही ज्ञान के ऊपर आवरण है। जैसे धूम अग्नि को ढके रखता है।

श्री म (पूर्व की ओर बैठे हुए भक्तों के प्रति)— इसीलिए ही तो बीच-बीच में निर्जन में चले जाना चाहिए। आश्रम में रहते हुए भी कभी-कभी निर्जन में चले जाना चाहिए।

[श्री म दर्शन, भाग-16, पृष्ठ 74-75]

●

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता (1915 – 2002)

- माँ सारदा के जन्मोत्सव पर सन् 1958 की प्रथम भेंट से ही स्वामी नित्यात्मानन्द जी की अन्तरंग शिष्या एवं उनके पश्चात् श्री म ट्रस्ट की आजीवन अध्यक्षा।
- स्वामीजी द्वारा रचित बंगला 'श्री म दर्शन' ग्रन्थमाला का प्रकाशन और उसका हिन्दी–अनुवाद तथा प्रकाशन।
- बंगला कथामृत का हिन्दी–अनुवाद तथा प्रकाशन।
- इनके पति प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा
  - – हिन्दी 'श्री म दर्शन' का 'M., the Apostle and the Evengelist' नाम से तथा
  - – हिन्दी कथामृत का 'Kathamrita' नाम से ही अंग्रेज़ी–अनुवाद और प्रकाशन।

■

2

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता और गीता

— डॉ० नौबतराम भारद्वाज

लेखक को मैट्रिक की परीक्षा के पश्चात् सन् 1965 से 1972 तक, आठ वर्षों तक, पूज्य स्वामी नित्यात्मानन्द जी, श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता तथा श्री धर्मपाल गुप्त— तीनों का ही सान्निध्य लाभ हुआ।

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता का जीवन रहा गीता के मूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित। इसी बात को प्रस्तुत करता यह लेख।

गीता हिन्दुओं का ही नहीं, अपितु समग्र विश्व का सर्वाधिक लोकप्रिय धर्म-ग्रन्थ है। श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता ने कैसे इस अनुपम ग्रन्थ को अपने जीवन में उतारा और कैसे वे गीतामय जीवन यापन करती थीं, आइए इसकी एक झलक पाने का प्रयास करते हैं :

भक्तों, भक्त-परिवारों में वे 'मम्मी' अथवा 'दीदी जी' सम्बोधनों से अभिहित होती थीं। बचपन से ही उनकी गीता तथा रामायण में प्रबल श्रद्धा थी। इन ग्रन्थों के विषय में अटूट विश्वास उन्हें अपनी माँ से विरासत के रूप में मिला था। गीता के 'गतासून्' (जिनके प्राण चले गए हैं अर्थात् मृत) तथा 'अगतासून्' (जिनके प्राण नहीं गए हैं अर्थात् जीवित) प्राणियों के बारे में उन्हें जीवन के शैशवकाल से ही जिज्ञासा थी।

अपनी इस जिज्ञासा को उन्होंने अपने गुरु स्वामी नित्यात्मानन्द जी के

समक्ष रखा भी था। अपनी प्रथम मुलाकात में उन्होंने अपने अन्य प्रश्नों के साथ-साथ यह भी पूछा था :

महाराज जी, गीता में भगवान ने कहा है कि जीव मरता नहीं और गीता भगवान की वाणी है। भगवान तो झूठ बोलते नहीं। मेरे बहन, बहनोई, बच्चा कहाँ हैं? वे सन् 1950 में मर गए थे। वे कहाँ हैं? बताओ।

उनके सुपुत्र, डॉ० कमल गुप्ता, उनके विषय में लिखते हैं—

'I realise that the common thread running through her entire life was regarding certain basic issues:
what is the purpose of life?
Why was I born and what is it that my life must achieve.'

[लाइयाँ ते तोड़ निभाइयाँ, पृ० 24-25, प्रकाशक: श्री म ट्रस्ट]

वर्ष 1958 में वे पूज्य गुरु महाराज स्वामी नित्यात्मानन्द जी से प्रथम बार मिलीं। उन्हें मिलने से पूर्व ही वे गीता तथा गीता-दर्शन से बहुत प्रभावित थीं। पू० महाराज से अपनी प्रथम भेंट का वर्णन करते हुए उन्होंने स्वीकार किया है कि पू० महाराज से अपने घर आने का निमन्त्रण देने का साहस वे नहीं कर पा रही थीं! ऐसा तेजस्वी, त्यागी, वैरागी सन्त पता नहीं एक साधारण गृहस्थ के घर आए या न आए। ऐसे में उन्हें गीता के 'अपि चेत् सुदुराचारो...'[1] से ही भरोसा मिला।[2]

गीता के 'नियतं कुरु कर्म त्वं'[3] तथा निष्काम कर्म के मूलभूत सिद्धान्तों ने मानो उनके जीवन में स्थायी निवास पा लिया था। उनके सम्पर्क में आया प्रत्येक सम्बन्धी, मित्र, जिज्ञासु, धर्मी, कर्मी इस बात को उन्मुक्त भाव से स्वीकार करता है कि वे एक अतीव कर्मठ महिला थीं। ऐसा लगता था कि आलस्य तो उनके निकट फटकता भी नहीं है। असह्य शारीरिक लाचारियों के बावजूद भी उन्हें 17-18 घण्टे अम्लानभावे कार्यरत देखा गया है।

---

1 अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः, सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ [गीता : 9/30]

2 नूपुर 2001, पृ० 81-90।

3 गीता : 3/8

यही कर्म जब निष्काम हो जाए तो कहा जा सकता है कि गीता उस व्यक्ति में साक्षात् अवतरित हो रही है। कर्म जब कर्म के लिए ही किया जाता है और फल की इच्छा के बिना भी किया जाता है, तो वह स्वाभाविकतया ही गीता का 'निष्काम' कर्म होता है। मम्मी के सम्पर्क में आया प्राय: हर व्यक्ति थोड़े मनन से ही यह स्वीकार करने को प्रस्तुत हो जाएगा कि उनका कोई भी काज शायद ही सकाम हो। गृहस्थाश्रम के सभी कर्त्तव्य और सन्तानों के प्रति सभी दायित्व उन्होंने केवल और केवल कर्त्तव्य भावना से ही निभाए।

जनवरी, 1972 की बात है। पू० महाराज और 'मम्मी' प्रतिदिन चण्डीगढ़ के रोज गार्डन, सैक्टर 16 में नित्य प्रात: सैर करने जाया करते। ठण्ड के कारण सूर्योदय के कुछ समय बाद ही जाया जाता। जाना प्राय: पैदल होता और आना अनेक बार रिक्शा में। वहाँ प्रवेश करते ही आमने-सामने मुँह किए चार बैंचों वाला एक स्थान था, जहाँ एक बैंच पर पू० महाराज तथा दूसरे बैंच पर अपना बैग साथ में रखकर 'मम्मी' बैठती थीं। वे वहाँ महाराज जी की उपस्थिति में गीता की क्लास लगाया करतीं। यूँ कहिए कि यह गीता-क्लास के लिए 'मम्मी' की ट्रेनिंग थी। गीता के श्लोक वे क्रमश: पढ़तीं और उनकी व्याख्या करतीं। पू० महाराज भी बीच-बीच में अपना मन्तव्य देते। इधर ग्यारह सैक्टर से 'मम्मी' की गुरु-बहिन श्रीमती प्रवेश बजाज भी अपनी बेटी रंजना को साथ लेकर प्राय: प्रतिदिन आया करतीं। रोज गार्डन में प्रात: भ्रमण के लिए आने वाले कुछेक जन भी कौतूहलवश देखते कि यहाँ क्या हो रहा है और फिर उस क्लास में सम्मिलित हुआ करते।

'मम्मी' ने उस स्थान का नाम 'सिद्ध पीठ' रख दिया था। जनवरी-फरवरी— पूरे दो महीने यह सिलसिला चलता रहा। पू० महाराज तो 2 मार्च, 1972 को एकजन भक्त के साथ अगले दो महीने के लिए तुलसी मठ, ऋषिकेश चले गए और मम्मी भी उस दौरान अधिकांशत: चण्डीगढ़ से बाहर ही रहीं।

इस प्रकार ठाकुर की अनन्त कृपा से सम्पूर्ण गीता का पाठ तथा उसे गुरु महाराज के पावन सान्निध्य में सुनने-जानने-समझने का सुअवसर उन्हें

प्राप्त हुआ।

12 जुलाई, 1975 को पूज्य महाराज के देहावसान के उपरान्त तो श्री म ट्रस्ट के मन्दिर श्री पीठ में गीता-क्लास के साथ-साथ 'मम्मी' ने अनेक भक्तों के निवास पर भी नियमित गीता-क्लास का आयोजन किया।

'दीदी जी' की मन्त्र शिष्या श्रीमती शकुन्तला बन्सल लिखती हैं :

''धीरे-धीरे दीदी ने हमारे यहाँ गीता-क्लास आरम्भ कर दी। प्रत्येक सोमवार को क्लास होती। समय भी निश्चित कर दिया— प्रातः दस से बारह बजे तक का। मेरे घर में ड्राईंग रूम के बगल में छोटा-सा कमरा था, उसी में उन्होंने मन्दिर बना दिया। आज भी वह कमरा मन्दिर ही है। उसी में गीता-क्लास शुरु हो गई। क्लास में हम दो-चार जन ही होते। गीता पढ़ाते समय बीच-बीच में वे 'कथामृत' और 'श्री म दर्शन' से उदाहरण देतीं।''*

'मम्मी' के अपने जीवन में गीता का पूर्ण पालन रहा।

●

* ''लाइयाँ ते तोड़ निभाइयाँ'', पृष्ठ 76

नूपुर तेरे चरणों का

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता अपने गुरु स्वामी नित्यात्मानन्द के संग रहीं लगभग 16 वर्ष तक (सन् 1958 से 1975 तक)। इस सुदीर्घ काल में अपने गुरु के संग रहते-रहते उनकी मन:स्थिति में धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगा। महाराज जी से मिलने के लगभग पाँच वर्ष पश्चात् सन् 1963 में तो वे उन्मनी-सी रहने लगीं— हर समय जैसे इस जगत से दूर, कहीं और खोई हुई— भाव में। उन्हीं दिनों उन्होंने अनेक मनोभाव, विचार कविताबद्ध किए। उन द्वारा रचित यह गीत भी उन्हीं दिनों (16 मई, 1964) का है। तब वे बाह्य रूप से थीं उन्मादवत् पर भीतर से आनन्द ही आनन्द। वे यूँ रहतीं जैसे प्रतिपल हों वे माँ के संग, जैसे वे हों माँ के चरणों का नूपुर, दिन-रात 'माँ' के अंग-संग।

नूपुर तेरे चरणों का, मैं यदि बन पाऊँ माँ।
तेरे चरण की हर गति के संग-संग बज पाऊँ माँ॥

तेरे कदम की हर झंकार में, मन मेरा बज जाए माँ।
इसी तरह दिन-रात के संग से, भेद तुम्हारा पाऊँ माँ॥

तुम हो कौन, मैं हूँ कौन, खोज यदि पा जाऊँ माँ।
नूपुर-गति से दूर रहूँ तब, मौन गीत सुन पाऊँ माँ॥

—नूपुर-2015, पृष्ठ 30

स्वामी नित्यात्मानन्द जी

- जन्म का नाम : जगबन्धु राय।
- जन्म : गंगा दशहरा, सन् 1893 (मामा श्री भैरवराय और श्री गोबिन्दराय के घर)
- स्थान : पूर्वी बंगाल (बंगला देश) के मैमनसिंह ज़िले का कोठियादि नाम का कस्बा
- शिक्षा : लॉ तक। लॉ करते–करते श्री म के पास जाने लगे। श्री म कथित ठाकुर की बातें डायरी में लिखने लगे।
- दीक्षा : स्वामी शिवानन्द (महापुरुष महाराज) जी से दीक्षित।
- ऋषिकेश–वास : सन् 1938 से ऋषिकेश में वास और 'श्री म दर्शन' महाग्रन्थ–माला का लेखन और प्रैस कॉपी की तैयारी।
- सन् 1958 में श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता से भेंट। शेष जीवन प्रायः उन्हीं के वास स्थान को निज आश्रम बनाए रखा। उनकी–सेवा सहायता से श्री म दर्शन का मुद्रण–प्रकाशन आरम्भ। रोहतक में सन् 1967 में श्री म ट्रस्ट की स्थापना।
- महासमाधि : 12 जुलाई, सन् 1975 को # 579/18–बी, चण्डीगढ़ में।

■

3

स्वामी नित्यात्मानन्द जी की गीता शिक्षा

— डॉ० नौबतराम भारद्वाज

गीता के 'त्यागी' अर्थ में था स्वामी नित्यात्मानन्द का मूर्त्त जीवन। पूज्य स्वामी नित्यात्मानन्द जी से शिक्षित-दीक्षित उनके ही इस प्रत्यक्षदर्शी शिष्य द्वारा प्रस्तुत है यह विवरण।

भक्तों के धर्मजीवन की नींव सुप्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से 1923 ईसवी में श्री म मिहिजाम में अरण्यवास कर रहे हैं। यहाँ जगबन्धु महाराज (स्वामी नित्यात्मानन्द) और विनय महाराज (स्वामी जितात्मानन्द) ने तो ब्रह्मचारी रूप में सारा समय ही अहर्निश मास्टर महाशय का सङ्ग लाभ किया। बेलुड़ मठ के स्वामी विश्वानन्द, स्वामी राघवानन्द आदि अनेक साधु-भक्त भी श्री म के दर्शनार्थ यदा-कदा आते-जाते रहे।*

श्री म का ब्रह्मचारी भक्तों के साथ यहाँ निवास वैदिक ऋषियों के शिष्यों सहित अरण्यवास की याद दिलाता है। जगबन्धु महाराज [बाद में स्वामी नित्यात्मानन्द] की तो बचपन से ही ऋषि-संग वास की उत्कट इच्छा थी। श्री म दर्शन के प्रथम खण्ड में उनकी यह इच्छा सर्वतोभावेन दैवी योजना से

* श्री म दर्शन, प्रथम खण्ड द्रष्टव्य।

पूरी होती हुई दिखाई देती है। यहाँ की निर्धारित दिनचर्या में निर्दिष्ट समय पर गीता का पाठ भी उपनिषद्, चण्डी, भागवत, कथामृत आदि शास्त्र ग्रन्थों के पाठ के साथ-साथ होता।

बात 5 अप्रैल, 1923 ईस्वी की है। श्री म प्रात: दस बजे इस वसन्त काल में श्रीमद्भगवद् गीता हाथ में लिए मिहिजाम कुटीर के ठाकुर-घर से, बाहर बरामदे में बिछे तख्तपोष पर आकर बैठ गए और गीता के अष्टादश अध्याय का पाठ करने लगे और बीच-बीच में व्याख्या करने लगे।[1]

प्रसङ्गत: श्री म के श्री मुख से सात्त्विक, राजसिक और तामसिक कर्मियों के लक्षण भक्तों ने विस्तार से सुने। अन्ततोगत्वा श्री म कहने लगे—

> ''मुखस्थ कर रखना अच्छा। जाना न हुआ हो तो अपने साथ मिलान नहीं किया जा सकता। प्रार्थना फिर कैसे की जाएगी? मैं कहाँ हूँ— क्या होना चाहता हूँ, यह जान लेने पर ही प्रार्थना की जाती है। निर्जन में एक-एक श्लोक का ध्यान करना चाहिए। किताबों का ढेर पढ़ने का कोई प्रयोजन नहीं। ध्यान और प्रार्थना— इनसे सब हो जाता है।[2]''
>
> ''अच्छा, ये जो छ: श्लोक[3] आज पढ़े हैं, सबको ही मुखस्थ कर रखना उचित। इनसे अपनी अवस्था भी जानी जाती है और मनुष्य को झट से पहचाना जा सकता है। ठाकुर कहा करते, 'गीता सर्वशास्त्रों का सार।' गीता पढ़ना अच्छा। मुखस्थ कर लेना उचित प्रत्येक को।''[4]
>
> ध्यातव्य है कि जगबन्धु महाराज को समग्र गीता कण्ठस्थ थी। उनके विषय में यदि यह कहा जाय कि उन्होंने गीता का ही जीवन यापन किया है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। जिन्हें उनका संगलाभ हुआ है, वे जब उनके साथ जिए जीवन का

1 श्री म दर्शन, प्रथम भाग, द्वितीय संस्करण, पृ० 319

2 श्री म दर्शन, प्रथम भाग, द्वितीय संस्करण, पृ० 322

3 गीता, XVIII, 23-28 श्लोक।

4 श्री म दर्शन, प्रथम भाग द्वितीय संस्करण, पृ० 323

अनुध्यान करते हैं तो स्पष्ट देखते हैं कि जगबन्धु महाराज का समग्र जीवन ही गीतामय था।

इसी प्रकार के एक अन्य गीता-प्रसङ्ग का उल्लेख करता हूँ— जगबन्धु महाराज मार्टन स्कूल के श्री म के कक्ष में बैठे हैं।[1] एक अन्य भक्त मोहन बांशी भी उनके साथ स्कूल के एक बैंच पर बैठे हैं। मोहन बांशी काफी समय से शास्त्रों से अनेक उद्धरण दे-दे कर कह रहे हैं, अमुक शास्त्र में यह लिखा है, अमुक में वह लिखा है। धर्म का सम्बन्ध तो सीधा आचरण से है, मात्र शास्त्र बघारने से नहीं है; इसलिए श्री म खिन्न-से होकर तुरन्त गीता के द्वादश अध्याय से भक्ति योग की व्याख्या करने लगे और 'अद्वेष्टा', 'मैत्र', 'करुण', 'निर्भय', 'क्षमी', 'निरहंकार', 'अनपेक्ष', 'उदासीन' आदि उत्तम भक्त के लक्षणों को एक-एक करके बताने लगे। निष्कर्षत: वे कहने लगे—

''ठाकुर के जीवन में वे समस्त देखे हैं। गीता का ही जीवन था कि ना— गीता विग्रह श्रीरामकृष्ण।[2]''

इसके पश्चात् हम देखते हैं कि जगबन्धु महाराज गीता-विग्रह श्रीरामकृष्ण में अपना अटूट विश्वास व्यक्त करते हैं। सम्भवत: इसी गीता-शिक्षण का ही फल था कि जगबन्धु महाराज (स्वामी नित्यात्मानन्द जी) ने अपनी इहलोक यात्रा के अन्तिम चरण में जो चार कैम्पाश्रम हिमाचल प्रदेश स्थित सोलन में वर्ष 1970, 1971, 1972 और 1973 में आयोजित किए थे, उनमें आश्रम की दैनिक चर्चा में गीता-पाठ एवं उसका अनुध्यान एक आवश्यक अंग था।

जगबन्धु महाराज के जीवन में घटा इसी प्रकार का एक अन्य प्रसङ्ग भी उल्लेखनीय है :

वसन्तकाल के प्रात: आठ बजे हैं। श्री म मार्टन स्कूल के अपने कक्ष में शय्या पर ही उत्तरास्य बैठे हैं और जगबन्धु महाराज को गीता का पञ्चदश अध्याय पाठ करके सुना रहे हैं[3] और बीच-बीच में व्याख्या भी करते हैं—

''यह अध्याय ही गीता का सार है। केवल गीता ही क्यों,

1 23 मार्च, 1924 ईस्वी।

2 श्री म दर्शन, हिन्दी, चतुर्थ भाग, पृ० 101

3 29 मार्च, 1924 ईस्वी।

सर्वशास्त्रों का सार है। संसार का मोह जाना नहीं चाहता है कि ना, तभी तत्त्व की ओर दृष्टि किए दे रहे हैं। बुद्धि को ही खींचकर ऊपर उठा दे रहे हैं। जैसे मनुष्य को होना स्वाभाविक, वैसे ही अर्जुन को मोह उपस्थित हुआ है। अपने आत्मीयों/कुटुम्बियों को कैसे मारे? देह-बुद्धि से मन को खींचकर आत्मस्थ किए दे रहे हैं। इसका स्वाद मिल जाने पर फिर नीचे उतरेगा नहीं। आत्मज्ञान बिना, ब्रह्मदृष्टि बिना देहबुद्धि जाती नहीं। अर्जुन के द्वारा कार्य करवाना होगा— धर्मयुद्ध। अर्जुन को उपलक्ष्य करके समस्त जगत् को शिक्षा देते हैं। यह घटना रात-दिन होती है।[1]''

इसी प्रसङ्ग में इसी पञ्चदश अध्याय के पाँचवें श्लोक में बताए गए गुणातीत स्थितप्रज्ञ के लक्षणों के प्रत्येक पद की श्री म ने व्याख्या की। जब देखा जगबन्धु महाराज ने वह सब ग्रहण कर लिया है, तो श्री म कहने लगे—

''श्री कृष्ण ने अर्जुन को जिन पुरुषोत्तम की बात कही, वे ही श्री कृष्ण रूप में, नर-रूप में सम्मुख उपस्थित हैं। अर्जुन बूझ नहीं सके जब तक उन्होंने ही नहीं बुझाया। समझ में आने वाला ही जो नहीं है। यही पुरुषोत्तम ही अब ठाकुर श्रीरामकृष्ण। बोले थे, 'एक दिन सच्चिदानन्द इसके (निज के) भीतर से बाहर आकर बोले : मैं ही युग-युग में अवतार होता हूँ।'

''कौन बूझ सकता है यह प्रहेलिका? जिसको बुझाते हैं, वही बूझता है।''[2]

एक बार की बात है कि श्री म मार्टन स्कूल की चारतले की छत पर खुले में ही उपनिषद् पाठ कर रहे हैं।[3] जगबन्धु महाराज, विनय महाराज, छोटे जितेन सुन रहे हैं। धर्मजीवन के साधन पक्ष की चर्चा करके श्री म आध घण्टे नीरव

---

1 श्री म दर्शन, चतुर्थ भाग, पृ० 133-34

2 श्री म दर्शन, चतुर्थ भाग, पृ० 137

3 20 अप्रैल, 1924 ईस्वी।

बैठे रहे और श्रोता भक्तगण अब तक जो पढ़ा गया था, उसका ध्यान करते रहे। इसके प्राय: आधा घण्टे बाद श्री म ने गीता खोली और चतुर्थ अध्याय के ये तीन श्लोक पढ़कर सुनाने लगे—

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रह:।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सर:।
सम: सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतस:।
यज्ञायाचरत: कर्म समग्रं प्रविलीयते॥

[जिसने अन्त:करण और शरीर जीत लिया है और सम्पूर्ण भोगों की सामग्री त्याग दी है, ऐसा आशा रहित पुरुष केवल शरीर सम्बन्धी कर्म को करता हुआ भी पाप को प्राप्त नहीं होता।

अपने आप जो कुछ भी आ प्राप्त हो, उसमें ही संतुष्ट रहने वाला और हर्षशोकादि द्वन्द्वों से अतीत हुआ तथा मात्सर्य रहित होकर सिद्धि एवं असिद्धि में समत्व भाव वाला पुरुष कर्मों को करके भी उनके बन्धन में नहीं बन्धता।

आसक्ति रहित होकर ज्ञान में स्थित हुए चित्त वाले युक्त पुरुष के यज्ञ के लिए आचरण करते हुए सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं।] (गीता : 4:21-23)

इसके उपरान्त इन श्लोकों के प्रत्येक पद की श्री म ने व्याख्या की और अन्त में प्रसङ्ग का उपसंहार करते हुए भक्तों से कहने लगे—

"श्री कृष्ण के जीवन में भी ये सब भाव प्रकाशित हुए थे। अपनी बात ही गीता में कहते हैं। जब ठाकुर समाधिस्थ रहते थे तब भीतर क्या होता है, उसे कौन बूझेगा? भक्त लोग केवल देखते रहते, यदि कोई कुछ समझ सके। व्युत्थित होकर जब साधारण अवस्था में रहते मनुष्य की भाँति, तब यही सब जो गीता में कहा गया है, वह देखा जाता। आत्मदर्शन के पश्चात् महापुरुषों के मध्य यह सब दिखाई देता है। आत्मदर्शन के तभी

तो ये सब साधन हैं।''[1]

युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण गीता का अर्थ सरलतम भाषा में समझाते हुए कहते हैं कि गीता-गीता दस बार लगातार कहते रहने से जो उच्चारित होने लगता है, वही है सम्पूर्ण गीता का एक शब्द में अर्थ। अर्थात् 'त्यागी' ही गीता का एक शब्द में अर्थ है। समग्र गीता का एक शब्द में अर्थ समझाने का इससे सरल उपाय अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता।

जगबन्धु महाराज का समग्र जीवन उसी त्याग की एक सुदीर्घ गाथा है— चाहे वह मास्टर महाशय के पास 1923 ईस्वी से 1932 ईस्वी तक का लगभग दस वर्षों का गुरुसंग वास हो; अथवा परवर्त्ती प्राय: छ: वर्षों का 1938 ईस्वी पर्यन्त रामकृष्ण मठ और मिशन के साधुरूप में 'शिवज्ञाने सेवा' का व्रत हो, या फिर 1939 ईस्वी से जुलाई 12, 1975 ईस्वी पर्यन्त शेष साधु जीवन ही क्यों न हो; गीता के इस 'त्यागी' अर्थ को जब हम स्वामी नित्यात्मानन्द जी के जीवन में मूर्त्त हुआ देखते हैं तो उपनिषदों के ये वाक्य कुछ-कुछ अवश्य समझ में आते हैं—

'त्यागेनैके अमृतत्त्वमानशु:'[2] (किसी-किसी ऋषि ने केवल त्याग द्वारा ही अमृतत्व-लाभ किया।) अथवा 'तपो ब्रह्म।'[3] (तप ही ब्रह्म है।)

●

1 श्री म दर्शन, पंचम भाग, पृ० 225।

2 कैवल्योपनिषत् 3, महानारायणोपनिषत् 10-5

3 तैत्तिरीयोपनिषत् 3-3, 3-4, 3-5

प्रधान कार्य है ईश्वर को जना देना

तुम जब समझते हो कि सर्वभूतों में वे हैं— उनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है— संसार, स्वदेश उनके बिना नहीं है। भगवान के साक्षात्कार के बाद देखोगे वे ही परिपूर्ण हुए रह रहे हैं। ऋषि वशिष्ठदेव ने रामचन्द्र से कहा था, 'राम, तुम जो संसार-त्याग करोगे कहते हो, मेरे साथ विचार करो; यदि ईश्वर इस संसार के बिना हों तब ही तो त्याग करना'। रामचन्द्र ने आत्मा का साक्षात्कार किया हुआ था, इसीलिए चुप रहे।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कहते, ''छुरी का व्यवहार (इस्तेमाल) जानकर छुरी हाथ में लो।'' स्वामी विवेकानन्द ने दिखाया कि यथार्थ कर्मयोगी किसे कहते हैं। देश का क्या उपकार करोगे? स्वामीजी जानते थे कि देश के गरीबों को धन देकर सहायता करने की अपेक्षा और अनेक महत् कार्य हैं। ईश्वर को जना देना प्रधान कार्य है। उसके बाद है विद्यादान; उसके परे जीवनदान; उसके परे अन्न-वस्त्र दान।

—श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत, भाग पाँच, 2011, पृष्ठ 263-64

स्वामी विवेकानन्द

- घर का नाम : नरेन्द्रनाथ दत्त।
- जन्म : 12 जनवरी, सन् 1863 ईसवी।
- स्थान : सिमला मुहल्ला, कोलकता।
- माता–पिता : श्रीमती भुवनेश्वरी देवी और विश्वनाथ दत्त।
- शिक्षा : बी.ए. दर्शनशास्त्र में विशेष रुचि।
- गुरु : श्रीरामकृष्ण परमहंस।
- बेलूड़ मठ की स्थापना : फरवरी, 1898 ईसवी।
- महासमाधि : 4 जुलाई, 1902 ईसवी।

■

4

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ...

(A collection from the complete works of Swami Vivekananda)

— प्रस्तुति : डॉ० निर्मल मित्तल

स्वामी विवेकानन्द का निज का जीवन ही रहा गीता का मूर्त्त रूप। 'The Complete works of Swami Vivekananda' में गीता पर उनके विचार यहाँ-वहाँ बिखरे हैं। गीता का एक श्लोक—

'क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥' [गीता : 2/3]

उन्हें सर्वाधिक प्रिय था। इसकी व्याख्या करते हुए वे कहते हैं :

Yield not to unmanliness, O son of Pritha! It doth not become thee. Cast off this mean faint-heartedness and arise, O scorcher of thine enemies!"

...

In the Shloka why is Shri Krishna goading Arjuna to fight? Because it was not that the disinclination of Arjuna to fight arose out of the overwhelming predominance of pure Sattva Guna; it was all Tamas that brought on this unwillingness.

The nature of a man of Sattva Guna is, that he is equally calm in all situations in life— whether it be prosperity or

adversity.

But Arjuna was afraid, he was overwhelmed with pity. That he had the instinct and the inclination to fight is proved by the simple fact that he came to the battlefield with no other purpose than that. Frequently in our lives also such things are seen to happen. Many people think they are Sattvika by nature, but they are really nothing but tamasika.

…

The Tamoguna loves very much to array itself in the garb of the Sattva. Here, in Arjuna, the mighty warrior, it has come under the guise of Daya (pity).

In order to remove this delusion which had overtaken Arjuna, what did the Bhagavan say?
As I always preach that you should not decry a man by calling him a sinner but that you should draw his attention to the omnipotent power that is in him, in the same way does the Bhagavan speak to Arjuna— नैतत्त्वय्युपपद्यते— "It doth not befit thee!"

"Thou art Atman imperishable, beyond all evil. Having forgotten thy real nature, thou hast, by thinking thyself a sinner, as one afflicted with bodily evils and mental grief, thou hast made thyself so— this doth not befit thee!"

So says the Bhagavan : ''क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ— Yield not to unmanliness, O son of Pritha. There is in the world neighter sin nor misery, neither disease not grief; if there is anything in the world which can be called sin, it is this— "fear"; know that any work which brings out the latent power in thee is Punya (virtue); and that which makes thy body and mind weak is verily sin. Shake off this weakness, this faint-heartedness! क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ— Thou art a hero, a Vira; this is unbecoming of thee."

If you, my sons, can proclaim this message to the world क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते— then all this disease, grief, sin, and sorrow will vanish from off the face of the earth in three days. All these ideas of weakness will be nowhere. Now it is everywhere— this current of the vibration of fear. Reverse the current; bring in the opposite vibration, and behold the magic transformation!

Thou are omnipotent— go, go to the mouth of the cannon, fear not. Hate not the most abject sinner, look not to his exterior. Turn thy gaze inward, where resides the Paramatman. Proclaim to the whole world with trumpet voice. "There is no sin in thee, there is no misery in thee; thou art the reservoir of omnipotent power.
Arise, awake, and manifest the Divinity within!"

If one reads this one Shloka— ''क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते। क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥''— one gets all the merits of reading the entire Gita; for in this one Shloka lies embedded the whole Message of the Gita.

[Complete Works of Swami Vivekananda, Vol. IV, 108-10]

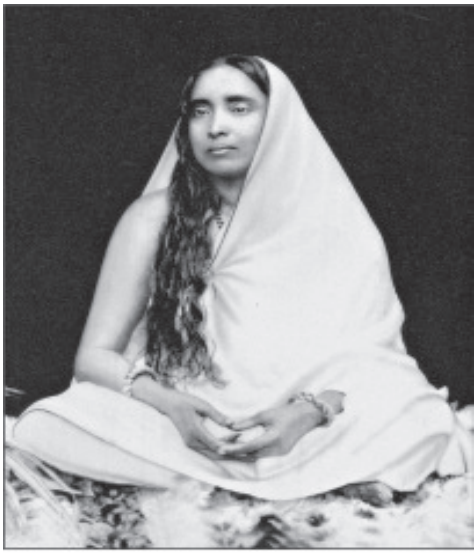

माँ सारदा

- जन्म : 22 दिसम्बर, सन् 1853 ईसवी।
- स्थान : जयराम बाटी (कामारपुकुर से 4 मील और दक्षिणेश्वर से 60 मील)
- माता–पिता : श्रीमती श्यामा सुन्दरी और श्री रामचन्द्र मुखोपाध्याय।
- भाई–बहन : चार छोटे भाइयों की बहन।
- विवाह : 6–7 वर्ष की अल्पायु में सन् 1859 में 22–23 वर्षीय ठाकुर रामकृष्ण के साथ।
- दक्षिणेश्वर–वास : प्रथम बार सन् 1872 में गंगा–स्नान के लिए जा रहे यात्री–दल के साथ 60 मील पैदल चल कर दक्षिणेश्वर पहुँचीं। बाद में वे आवश्यकतानुसार कभी दक्षिणेश्वर, कभी जयराम बाटी रहती रहीं। ठाकुर के देहावसान के पश्चात् वे प्रायः कोलकता रहा करतीं।
- महासमाधि : कोलकता में 21 जुलाई, सन् 1920 ईसवी को रात्रि डेढ़ बजे।

■

5

Holy Mother Shri Sarada Devi – An illustration of *Karmayoga*

—Ashish Dasgupta

ठाकुर 50 वर्ष की अवस्था में ही अपने रोते-बिलखते भक्त बालकों को छोड़कर चले गए थे। उन सभी बच्चों को बाद में माँ सारदा ने सम्भाला तथा ठाकुर के शेष कार्य को पूरा करने में पूरा जीवन लगा दिया। वे ही संघ-जननी बनीं, शिव-ज्ञाने-जीव-सेवा कार्य के लिए भक्तों की प्रेरणा बनीं। कर्मयोग का जीवन्त उदाहरण बनीं। कर्म करते-करते ही नाम-जप कैसे किया जा सकता है, उन्होंने भक्तों को सिखाया।

Cossipore Udyan Bati, Kolkata. Shri Ramakrishna, the Master, was brought here by his disciples to recover his frail health. He was suffering from throat cancer and had difficulty in talking as well as in swallowing food. Dr. Mahehdra Sarkar was treating him and advised him not to strain his throat by talking. However, the Master was busy in moulding the life of a group of selected young dedicated disciples, who were to carry out his mission and enlighten the world. The Holy Mother Shri Sarada Devi was staying down stairs and was looking after the Master's comfort. The Master's health was declining fast.

One day, watching the Master gazing at her, the Mother

enquired if he would like to tell her something. The Master said in a discontent voice, 'Well my dear, won't you do anything? Should this (pointing to his body) do everything?' 'I am a mere woman. What can I do?' – the Mother uttered. 'No, no', said the Master, 'you'll have to do a lot.'

On another occasion he told her, 'Look, the people of Calcutta are, as if, swarming like worms in darkness. Do look after them.' Then also the Mother pleaded, 'I am a woman. How can that be?' The Master continued pointing towards his body, 'What after all has this one done? You'll have to do much more.'

Long ago at Dakshineshwar, Shri Ramakrishna worshipped the Mother as 'Shakti' (as *Shodashi* on 5th June, 1872 on the day of *Phalaharini Kali Puja*) to awaken her Divine Power. She was the Power of Shri Ramakrishna, the Absolute Brahman. Once the Master said – 'She is not an ordinary woman; She is *Sarada, Saraswati* (the Goddess of Knowledge); she has come to impart knowledge.'

The Master took keen interest and cares to instruct her in great details in spiritual discipline as well as in worldly activities. Shri Ramakrishna knew that, in his absence, she was to carry forward his mission.

The Master passed away in August 1886. The grief-stricken young disciples led by Narendranath (later Swami Vivekananda) didn't want to return home and renounced the world. They didn't have any shelter, nor proper clothing and food. But that couldn't deter their spirit. Most of them went around the country as wandering monks and engaged themselves in *tapasya*. The grief-stricken Mother also went on pilgrimage. While visiting Bodh Gaya she witnessed the comfortable life in Buddhist monastery, and that reminded her misery of the Master's monastic disciples. She wept and

prayed to the Master saying,
'O Master, you came, sported with these few and then went away; and should everything end with that? …those who give up the world in your name may not lack simple food and clothing. They will live together, meditating on you and your teachings, and people afflicted with sorrows of the world will go to them for peace…'

On return from her pilgrimage the Mother started living in her parental house at Jayrambati after a brief stay at Kamarpukur. The monastic disciples of the Master gathered around her. They showed the same respect to her as they used to give to their Master. They too received the same love, affection and guidance from the Mother as they used to get from the Master. Soon, the spiritual seekers and the common earthly life afflicted people from all strata of society started coming to her from different corners of the country to take refuge in her. She became the spiritual center and the source of inspiration for all. She attained the glory of universal motherhood, the *Jagat Janani*.

Swami Vivekananda on his return from the West established the monastery at Belur near Kolkata – the Ramakrishna Math and Ramakrishna Mission, with her blessings. He and his monastic brothers would take her consent prior to taking up any activity. They worshipped her as *Sangha Janani*. She showed extraordinary wisdom and became the centre of activity.

Shri Ramakrishna said: *Karma* is needed to realize God. Unless one does *Karma* one cannot acquire *Bhakti* and thus cannot realize God. *Dhyana* (Meditation), *Japa* (Repeating His name), *Gunakirtan* (Singing His praise) are acts of *Karma*– also, acts of giving (*Daan*), Vedic Sacrifices (*Yagna*).*

---

* [Sri Sri Ramakrishna Kathamrita, Part I, Chapter 13, Section 3, Page 170, Bengali edition published by Kathamrita Bhawan].

Performing action in a selfless and dispassionate (*Nishkam*) manner without any desire of its fruit is *Karma Yoga.*

Shri Krishna said:

'I have, O Paartha, no duty, nothing that I have not gained, in the three worlds; yet I do continue in action.'

'If ever I did not continue to work without any relaxation, O Paartha, men and women would in every way follow my example'.*

Similarly, the Holy Mother though fully aware of her true nature, behaved as a human being and remained ceaselessly occupied with meditation, japa, and all kinds of household activities, so that people follow her example.

All along her life she maintained very active and regulated life. Her day would start at 3 a.m. and she would remain occupied throughout the day with *japa*, meditation, *puja*, initiation of devotees and dealing with spiritual seekers. Number of devotees from Kolkata or other places would visit Jayrambati whenever she lived there. It was a herculean task for her to arrange milk, vegetables and groceries for them at that remote village. She cooked herself and took care of them without any sign of tiredness. Jayrambati was a malaria infested village and she used to fall sick repeatedly – this further added to her misery.

On the other side, her brothers were selfish and quarrelsome, nieces had enmity between them, Radhu was eccentric and short tempered, Nalini was obsessed with mania

---

* न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ [गीता : 3/22, 23]

of purity, sister-in-law Surabala was insane – living in such an apparent intolerable social atmosphere, it was possible only for the Mother to remain calm, patient and forgiving.

In the words of Swami Premananda:

'You have seen with your own eyes, how the Mother, who is in reality the Great Goddess ruling over those wield the destinies of kings and emperors, has yet elected to become a poor woman plastering the house with cow-dung, scouring utensils, winnowing rice and clearing the leavings of the devotees after their meals. She undertakes all these tasks to teach the householders their domestic duties.'

Swami Vivekananda on his return from USA stressed on charitable activities by the monks – 'Service to mankind is service to God'. But his brother disciples had reservation considering that that was against the teaching of their Master Shri Ramakrishna – 'The goal of human life is the realization of Ultimate Reality'. Such doubt was removed soon when the Mother visited Ramakrishna Mission Sevashrama at Kashi. She took keen interest and went around the hospital. She was highly pleased to see the charitable work being done by the monks; later she sent Ten Rupees as a token of appreciation [it is still preserved by the Sevashrama]. Swami Brahmananda, Swami Shivananda and other monks were over joyous on getting her approval.

On another occasion to remove doubt of one of her monastic sons that work like running hospital, selling books, keeping accounts would divert from God, the Mother firmly told: "If you don't work, with what you will occupy yourself day and night? Is it possible to meditate twenty-four hours?…Everything shall go on as the Master ordains. The Math will run as it is doing now. Those who can't put up with this will clear out." The message was very clear and removed

all doubts from the minds of the monastic members of the Ramakrishna Order for ever.

To uplift the condition of girls and women the Mother encouraged for their education and she was against the early marriage system. When Swamiji invited Sister Nivedita to fulfill his dream of girls' education, the Mother accepted Sister Nivedita whole-heartedly [she named her 'khuki'] and blessed her. She suggested devotees to send their girls to the school.

She toured South India along with Swami Ramakrishnananda and encouraged the activities of the Order, initiated many devotees and guided them to live a meaningful life.

The Mother never ceased to work and put forth her life style to inspire one and all in the background of *Karmayoga*.

[Ref. : 'Holy Mother Sri Sarada Devi' by Swami Gambhirananda]

●

6
श्री श्री माँ का कर्मयोग

— डॉ० प्रतिमा मजुमदार एवं
अनुराधा दासगुप्ता

श्री माँ गीता में बताए चारों योगों— ज्ञानयोग, भक्तियोग, राजयोग व कर्मयोग— में पूरी तरह प्रतिष्ठित थीं। तो भी उनका वैशिष्ट्य है कर्मयोग। वे कहतीं— हर काम के साथ-साथ जप करना चाहिए नहीं तो कर्म होगा बन्धन का कारण। यही है कर्मयोग।

जैसा भगवान ने कहा, ''मेरा जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् अलौकिक है''[1]— ठीक उसी तरह ठाकुर और श्री माँ का आविर्भाव भी है दिव्य। बहुत संकट के काल में वे आए।

गीता का जन्म हुआ था श्री कृष्ण के मुख से द्वापर युग में। अब कलियुग में वे फिर आए गीता की व्याख्या करने के लिए श्रीरामकृष्ण के रूप में अवतार लेकर। उन्होंने कहा था— ''शास्त्र गुरुमुख से सुनना चाहिए।'' सच्चिदानन्द हैं वही गुरु— जैसे ठाकुर एवं माँ। ठाकुर का महावाक्य है— जो राम, जो कृष्ण वही अब इस शरीर में रामकृष्ण। और माँ हैं उनकी शक्ति। ठाकुर थे त्यागसम्राट और माँ त्यागसम्राज्ञी— स्वामीजी बोले थे। इन दोनों का जीवन है गीता एवं उपनिषदों का मूर्त रूप। अथवा गीता है इन दोनों का जीवन आलेख्य। ठीक-ठीक निष्काम कर्म जो है गीता का विशेष वैशिष्ट्य,

1 जन्मकर्म च मे दिव्यम्— [गीता : 4/9]

वह माँ और ठाकुर के जीवन में पूर्ण प्रेम व सहानुभूति द्वारा परिपुष्ट हुए हैं।

नियतं कर्म कुरु त्वं[1] [जो तेरे लिए नियत (निश्चित) है, तू वह कर्म कर]। भगवान का कहना है— देहधारण करने से काम करना ही पड़ेगा। गीता में है ''यदि मैं कर्म न करूँ तो सारी सृष्टि नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगी।''[2] ठाकुर एवं माँ का कहना है— काम सदा भगवान को स्मरण करके ही करना चाहिए। कहा— प्रथम गुरुवाक्य सुनकर कार्य आरम्भ करो, साथ में भजन रहने से गुरुवाक्य में दृढ़ विश्वास होता है। तब कार्य 'उपासना' हो जाता है— (work becomes worship then)।'' प्रत्येक कर्म करने के साथ-साथ जप-ध्यान भी करना पड़ेगा लगातार। हर काम के साथ-साथ माँ सदा मन में जप करतीं। वे कहतीं— हर काम है ईश्वर का। जप से कर्मपाश कट जाएगा; नहीं तो कर्म होगा बन्धन का कारण। यही है कर्मयोग। अर्थात् कर्म का परमात्मा के साथ योग— कर्मयोगेने योगिनाम्।[3]

इसके लिए पहले मन को वश में करना पड़ेगा— अभ्यास और वैराग्य द्वारा। शिशु सारदा ने बचपन से अपने माता-पिता के आदर्श से शिक्षा ग्रहण की। उनका जन्म हुआ दरिद्र परिवार में; किन्तु मन था अति उदार एवं संसार की सारी चीजों में आसक्ति-शून्य। घर के सारे कामों में अपनी माँ का हाथ बँटाना— जैसे रसोई का काम, खेत में मजदूरों को नाश्ता पहुँचाना, गाय के लिए घास काटना, छोटे भाई को सम्भालना व देखभाल करना, दुर्भिक्ष के समय पिता रामचन्द्र ने जब लंगर लगाया तो शिशु सारदा ने अपने नन्हें हाथों से पंखे से गरमागरम खिचड़ी को हवा करके ठंडा करने का प्रयास किया ताकि भूखे आदमी आसानी से उसे खा सकें।

काम करने में अत्यन्त प्रेम, निष्ठा, प्यार था। बचपन से ही काम करते-करते ऐसा अभ्यास हो गया था कि कभी काम को झंझट नहीं सोचा। हर काम बड़े प्यार से करतीं, कभी कोई कष्ट नहीं होता, न ही आलस्य। यह है कर्म-अभ्यासयोग। इससे वे हर काम बड़ी आसानी से कर लेती थीं।

विवाह के उपरान्त ठाकुर ने जब बड़े प्यार से उन्हें सारे लौकिक

---

1 गीता : 3/8 2 गीता : 4/9 3 गीता : 3/3

व्यवहार व धर्म-जीवन-लाभ के लिए उनके चरित्र को गढ़ने करने का प्रयास किया, सारदा देवी भी श्रद्धा तथा खुले दिमाग से यह सब शिक्षा ग्रहण करने लगीं।

वे सुबह तीन बजे से जप में लग जातीं। ध्यान करते-करते समाधि हो जाती थी, कोई होश रहता नहीं। उसके बाद रसोई का काम— ठाकुर के लिए अपने हाथ से खाना बनाना, घर साफ करना आदि। कितने ही भक्त और अतिथि आते, सबके लिए खाना पकाना, कभी नरेन्द्र आता तो देखते ही उसके लिए मोटी रोटी और चने की दाल बनातीं। गिरीश बाबू को चाय की आदत थी। उनके लिए दूध भीख माँगकर ले आतीं। कभी कुछ सब्जी लेकर आतीं चुपचाप, किसी को बताती नहीं ताकि किसी को कष्ट न हो। सेवा के सारे काम करतीं पूरे अनासक्त भाव से। ऐसा करते-करते उनमें दैवी शक्ति आ गई थी।

माँ कहतीं थीं कि दिन में एक चौथाई समय में संसार के काम करो और बाकी समय ईश्वर के साथ योग रखो। नलिनी दीदी से कहा था, ''तुम्हारी उम्र में मैंने कितना काम किया है, और यह सब करके भी रोज़ एक लाख जप करती। बिना परिश्रम किए क्या कुछ होता है?''

> गीता कहती है— तेरा कर्म में ही अधिकार है, उसके फल में कभी नहीं।
>
> कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। [गीता : 2/47]

माँ रहती थीं नहबत में— एक छोटे से कमरे में। दिन भर दूसरों की सेवा करतीं। कभी तो ठाकुर से मिले दो-दो महीने हो जाते। किन्तु मन सदा प्रफुल्ल। ऐसा जैसे हृदय में आनन्द से पूर्ण घट स्थापित है। कोई कुछ माँगे तो खाली हाथ न वापस जाए। गाने में है— 'माँ बोले डेके जे आशे दुआरे, शून्य हाथे से फिरे ना'— कोई 'माँ' कह कर आए तो मैं रह नहीं पाती।

ठाकुर थे आनन्दमय पुरुष, माँ भी उन्हीं के समतुल्य। कहतीं— 'सभी कहते हैं 'अशान्ति', पर मैंने तो कभी किसी अशान्ति को जाना ही

नहीं।' माँ ने कहा— मेरे पास इतना काम था, तब भी ठाकुर छीका बनाने के लिए पटसन मँगवा देते। कहते— भक्तों के लिए सन्देश रखना है। आलसी बनकर बैठे रहने से मन में कुभाव आता है। उनका सब ही था लोक-शिक्षा के लिए। कहते— संधिक्षण में जप, ध्यान करना चाहिए नियमित रूप से। सोतीं बहुत कम। सारा दिन, सारा जीवन भर दूसरों की भलाई के लिए सोचतीं। सबके लिए जप करतीं सर्वक्षण। कहतीं— दीक्षा लेने के बाद कोई कुछ नहीं करता। जब भार लिया है तो उन्हें मुझे ही देखना पड़ेगा। यह जानते हुए भी कि शिष्य का पाप ग्रहण करना पड़ेगा, श्री माँ दया करके, कृपा करके मन्त्र देतीं और सोचतीं— शरीर तो जाएगा ही, फिर भी इन सबका भला हो। प्रार्थना करतीं, सबको चैतन्य हो जाए। ठाकुर ने कहा था—
वह शारदा है— सरस्वती; ज्ञान देने आयी है। महा बुद्धिमती है। वह मेरी शक्ति है।

माँ ठीक समझती थीं किसको क्या चाहिए। किससे कब कैसा व्यवहार करना उचित है। अत्यन्त विलक्षण, बुद्धिमती, दूरदर्शी थीं वे। कहाँ 'हाँ', कहाँ 'ना' कहना उचित, सब जानती थीं। गाँव की लड़की थीं— शिक्षा नहीं, तब भी नारी शिक्षा में उत्साही। अंग्रेज़ी शिक्षा में भी आग्रही थीं। मन में कोई भेदभाव नहीं था। कहा था—
जैसा मेरा शरत्, वैसा ही अमजद (डाकू)— मेरा बेटा।

संघ-गठन के मामले में विवादास्पद विषयों की समाधान-कर्त्री थीं श्री माँ। काशी-सेवाश्रम में सब देख-सुनकर माँ खूब खुश होकर बोलीं— यहाँ ठाकुर स्वयं विराजमान हैं। बोलीं— यह सब तो उन्हीं का काम है। संन्यासियों से श्री माँ कर्मयोग तथा साधन-भजन दोनों को समान महत्व देने को कहतीं। संघ में बड़ी कठोरता से संयम, नियमों का पालन करवातीं।

सच्चिदानन्द ब्रह्म जब सर्वव्यापी शक्तिरूपिणी अर्थात् सृष्टि, स्थिति, प्रलयरूपिणी होकर प्रकाशित हुए, तब वे हैं 'माँ'।
यह ही हैं हमारी माँ, जगदम्बा, यह ही माँ भवतारिणी, और ठाकुर की गर्भधारिणी माँ। यह 'माँ' स्वयं ही हैं 'गीता'— सर्वशास्त्रसार, ठाकुर बोले।

●

Thakur's Training

"Thakur had an eye on everything. Devotees who went to him were trained by personal demonstration. He used to say, 'He who can keep account of salt can also keep account of sugar-candy.' A person who is slovenly, ever careless in the simple tasks of daily life, will have difficulty progressing in spiritual life. It is with this very mind that one reaches Him. If there is insincerity or mistaken ideas in the mind, He cannot be attained. Because he bought a pot with a crack in it, Yogen Swami (Swami Yogananda) was scolded badly by Thakur. He said to Yogen, 'Is the shopkeeper Yudhishthira, a personification of spirituality? He will, of course, try to sell his trash. Why didn't you examine it before bringing it here? You have eyes in your head.' He was asked to go back then and there and bring a new one in exchange.

...

"The whole life should be a spiritual life, all work spiritual practice. Religious conduct for a while and contrary conduct afterwards will not do. Whether eating, walking, sleeping, dreaming, telling beads, concentrating, worshipping or reading the scriptures, in every condition, the mind should remain centered round one thought, one ideal: realization of God."

—'M., the Apostle and the Evangelist-1, ch. 4, pg. 81-82'

श्रीरामकृष्ण परमहंस

- जन्म : 18 फरवरी, सन् 1836 ईसवी।
- स्थान : कामारपुकुर (हुगली ज़िले का अन्तर्वर्ती ग्राम)
- माता–पिता : श्रीमती चन्द्रमणि देवी और श्री क्षुदिराम चट्टोपाध्याय (चटर्जी)।
- भाई–बहन : दो बड़े भाई, दो बहनें।
- शिक्षा : कुछ दिन पाठशाला में गए। प्रारम्भ से ही अर्थकरी विद्या से विकर्षण। स्कूल से भागे रहते। लेख सुन्दर। अद्‌भुत स्मरण–शक्ति।
- विवाह : 22–23 वर्ष की आयु में सन् 1859 में 6–7 वर्षीय सारदा मणि के साथ।
- दक्षिणेश्वर–वास : बड़े भाई रामकुमार की मृत्यु के बाद दक्षिणेश्वर में पुजारी। बाद में पूजा–कर्म से निवृत्त होकर वहीं दक्षिणेश्वर में स्वतन्त्र वास– प्रायः अन्त समय तक।
- महासमाधि : 16 अगस्त, 1886 ईसवी।

■

7

धर्म संस्थापनार्थाय...

— श्री ईश्वरचन्द्र

गृहस्थों के मन में प्राय: यह भय रहता है कि वे तो नाना प्रकार के कार्यों में बद्ध रहते हैं। अत: उन्हें ईश्वर-लाभ कैसे हो सकता है? ठाकुर श्रीरामकृष्ण गृही भक्तों को आश्वासन देते हुए सदा कहते— 'गृहस्थ में रहते हुए होगा क्यों नहीं?' पर कैसे होगा, इस लेख में इसी विषय पर ठाकुर-वाणी का उल्लेख है।

युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण ने निज मुख से कहा है— मैं अवतार। श्री कृष्ण गीता में कहते हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे। [श्लोक सं. 4/8]

तो भगवान तीन कारणों से अवतार लेते हैं—

(i) साधुओं की रक्षा के लिए

(ii) दुष्टों के विनाश के लिए

(iii) धर्म संस्थापना के लिए

ठाकुर श्रीरामकृष्ण का अवतार हुआ मुख्यत: धर्म-संस्थापना के लिए।

धर्म माने क्या? धर्म माने कर्तव्य, ड्यूटी, अपना काम पूरे मन से करना। अपना काम जैसे अध्यापक का काम है— मनोयोग से पढ़ाना, डॉक्टर

का काम है— रोगी का सही उपचार, क्षत्रिय का कार्य है देश की रक्षा, इसके लिए शत्रु से युद्ध भी करना पड़े तो वह उसका धर्म है, उसका कर्तव्य है। ऐसे ही गृहस्थ का धर्म। गृहस्थी का कर्तव्य है घर में रह रहे सभी जनों— माता, पिता, पुत्र-पुत्री, पत्नी आदि की उचित देखभाल। कर्तव्य निभाते समय कठिनाइयाँ तो आएँगी ही। पर इस कारण कर्तव्य से भाग जाना अधर्म है, ऐसी बात ही श्रीरामकृष्ण अपने पास आने वाले गृहस्थ भक्तों को बार-बार समझाते हैं। ठाकुर कहते हैं— ईश्वर-दर्शन ही मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य है पर साथ ही बता रहे हैं कि गृहस्थ में रहकर भी ईश्वर को पाया जा सकता है। मनुष्य के मन में होता है जैसे गृहस्थ तो एक बन्धन है, गृहस्थ का ईश्वर-प्राप्ति के साथ क्या और कैसा सम्बन्ध? पर नहीं, ठाकुर बार-बार आश्वासन दे रहे हैं— 'गृहस्थ में रहकर होगा क्यों नहीं?'

कथामृत पढ़ते हुए ठाकुर की यह अभयवाणी सभी संसारियों, सभी गृहस्थों को आश्वस्त कर रही है। पर हाँ, गृहस्थ में रहते हुए भी ईश्वर को तभी पाया जा सकता है यदि उनके बताए मार्ग पर चला जाए। 'कथामृत' का प्रारम्भ ही होता है एक ऐसे गृहस्थ नवयुवक से जो गृहस्थ के झंझटों से तंग आकर देह-त्याग के लिए निकल पड़ा है। सुयोग उसे खेंच लाता है ठाकुर रामकृष्ण के पास। यह नवयुवक कोई और नहीं, ठाकुर के अनन्य भक्त, ठाकुर के प्रमुख पार्षद और ठाकुर-वाणी के लेखक और संवाहक स्वयं श्री म हैं।

अन्तर्यामी ठाकुर जानते हैं यह युवक संसार की, गृहस्थ की ज्वाला से भयभीत होकर घर से भाग आया है। वे उसके मन की सब बात जानते हैं। तभी तो प्रथम भेंट में ही उन्होंने उसके मन को ऐसे आकर्षित कर लिया कि जाते समय वह युवक सोचता है—

''...ये सौम्य कौन हैं?— जिनके पास से लौटकर जाने की इच्छा नहीं हो रही है... कैसा आश्चर्य, फिर दुबारा आने की इच्छा हो रही है। इन्होंने भी कहा है, आबार ऐशो (फिर आइयो)। कल या परसों प्रातः आऊँगा।*''

अब देखिए, प्रथम दर्शन में ही देहत्याग का भाव तो जाता रहा ना

---

* 'कथामृत' भाग-I, 1998, पृष्ठ 24

मास्टर महाशय का! और जब दूसरी बार ठाकुर से मिलने दक्षिणेश्वर आए तो ठाकुर परिचय के लिए आवश्यक दो-चार बातें पूछने के बाद कहते हैं :

> ''प्रताप का भाई आया था। यहाँ पर कई दिन तक था। काज-कर्म नहीं। कहता था, मैं यहाँ पर रहूँगा। स्त्री, पुत्र, कन्या— सब ससुराल में छोड़ आया है। बहुत-से बच्चे हैं। मैंने डाँटा, 'देखो तो, लड़के-बच्चे हुए हैं, उन्हें क्या फिर मोहल्ले के लोग खिलाएँगे, पिलाएँगे, बड़ा करेंगे? लज्जा नहीं आती कि स्त्री-बच्चों को कोई और खिलाता है, और उन्हें ससुराल में डाल रखा है।' मैंने खूब डाँटा और काज-कर्म खोजने के लिए कहा। तब फिर कहीं यहाँ से जाने को हुआ।''

श्रीरामकृष्ण मास्टर महाशय से उनका विवाह हो गया है क्या, लड़के-बच्चे हुए हैं क्या, आदि बातें बाद में पूछते हैं पर गृहस्थ का कर्तव्य प्रताप की बात कहकर उन्हें पहले ही बता दे रहे हैं। वे अवतार हैं ना! जानते हैं मास्टर महाशय के मन की बात। इसीलिए प्रताप का नाम लेकर कह रहे हैं— ''देखो तो, लड़के-बच्चे हुए हैं, उन्हें क्या फिर मोहल्ले के लोग खिलाएँगे, पिलाएँगे, बड़ा करेंगे? लज्जा नहीं आती...।''* यह सीधी-सीधी मास्टर महाशय को दी गई डाँट है।

विवाह किया है तो पत्नी और बच्चों का उत्तरदायित्व पति, पिता का ही होता है। गृहस्थ किया है तो गृहस्थ निभाना भी व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य है। अर्थात् मास्टर महाशय को कहीं कोई गलतफहमी न हो, इसलिए अन्तर्यामी ठाकुर स्पष्ट कर देते हैं कि— गृहस्थ धर्म से, अपने कर्तव्य से, भागना पाप है।

ठाकुर के साथ लम्बे चले वार्तालाप से मास्टर महाशय की समझ में यह बात आ जाती है कि गृहस्थ में तो अब रहना ही होगा। उन्हें यह भी विश्वास हो जाता है कि इनसे उचित मार्ग-दर्शन मिल सकता है। अब उनके मन में आया कि यदि गृहस्थ में रहना ही है तो कैसे रहें, जिससे गृहस्थ के झंझटों-दु:खों से बचा जा सके। अत: विनीत भाव से वे श्रीरामकृष्ण से पूछ

---

* 'कथामृत' भाग-I, 1998, पृष्ठ 25

ही लेते हैं :

''गृहस्थ में किस प्रकार रहना होगा?''

उत्तर देते हुए श्रीरामकृष्ण कहते हैं :

''सब कार्य करोगे किन्तु मन ईश्वर में रखोगे। स्त्री, पुत्र, बाप, माँ— सबको लेकर रहोगे और सेवा करोगे, मानो वे कितने अपने जन हैं। किन्तु मन में जानोगे कि ये लोग तुम्हारे कोई नहीं हैं।''

यह क्या कह रहे हैं श्रीरामकृष्ण? घर-परिवार में जिनके साथ हम रहते हैं, जिनके पालन-पोषण-सेवा के लिए नाना कर्म, नाना चेष्टाएँ करते हैं, उनके बारे में कैसे सोच लें कि ये मेरे अपने नहीं हैं? अपने हैं तो उनमें आसक्ति नहीं होगी भला? आसक्ति होगी तो उनसे कुछ अपेक्षाएँ भी होंगी। अपेक्षाएँ पूरी न हों तो मन में दु:ख तो होगा ही। यही दु:ख बढ़ते-बढ़ते अवसाद हो जाएगा, खिन्नता होगी, वितृष्णा होगी और तंग आकर व्यक्ति वही करेगा जो श्री म करने चले थे। गृहस्थी से तंग आकर व्यक्ति सोचता ही है— छोड़ो इस संसार को, इसमें रखा ही क्या है और मरना तो है ही एक दिन, फिर अभी क्यों नहीं? ऐसे घर-परिवार से, दुखों से निजात तो मिलेगी।

पर श्रीरामकृष्ण तो कुछ और ही करने को कह रहे हैं। कहते हैं—

''सबको 'अपना' जानकर सबकी सेवा करोगे; पर मन में जानोगे कि वे तुम्हारे कोई नहीं है।''

हम संसारियों के लिए तो भई ऐसा सोचना भी कठिन, फिर पालन तो असम्भव। पर यह सम्भव हो सकता है। कैसे? दासी के उदाहरण से ठाकुर बता रहे हैं :

''बड़े आदमी के घर की दासी सब काम करती है किन्तु गाँव के अपने घर की ओर मन पड़ा रहता है। और फिर मालिक के बच्चों का अपने बच्चों की भाँति पालन करती है। कहती है— 'मेरा राम', 'मेरा हरि'...। किन्तु मन में खूब जानती है— ये मेरे कोई नहीं हैं।''

[कथामृत भाग-1, संस्करण 1998, पृ० 30]

एकदम सटीक उदाहरण! हम हर रोज़ ही बड़े आदमी माने धनी व्यक्ति के घर में काम कर रही दासी का ऐसा ही आचरण देखते हैं। कितने प्यार से वह मालिक के बच्चों को दुलराती है, खिलाती-पिलाती है। जैसे वे बिल्कुल उसके अपने हों, पर मन में खूब जानती है 'ये मेरे बच्चे नहीं हैं। मेरे बच्चे तो दूर गाँव में हैं जिनके लिए मैं इन बच्चों को खिलाने, पिलाने, इनका पालन-पोषण करने, इनकी देखभाल करने की ड्यूटी करती हूँ।'

श्रीरामकृष्ण बता रहे हैं कि यदि गृहस्थ में रहकर गृहस्थ के सभी काम करते हुए भी गृहस्थ के दु:ख-कष्टों से बचना हो तो दासी की इस मानसिकता से ही घर में रहना चाहिए। मन में रहे कि यह संसार मेरी कर्मभूमि है। यहाँ जिन जनों के साथ मैं रह रहा हूँ, उनके प्रति मुझे कर्तव्य तो निभाना ही है परन्तु हर समय याद रखना है कि इनके साथ मेरा सम्बन्ध इसी जन्म का है, मेरा नित्य सम्बन्ध तो ईश्वर के साथ है। मैं उन्हीं ईश्वर की सन्तान हूँ और उनके पास ही मुझे वापिस जाना है। अत: आन्तरिक प्यार ईश्वर से ही होना चाहिए।

पर ऐसे निर्लिप्त होकर, अनासक्त होकर संसार करना, गृहस्थ निभाना तो बड़ा कठिन है। हाँ, सो तो है। पर इसका उपाय बताते हुए ठाकुर कह रहे हैं—

''फिर भी क्या गृहियों के लिए उपाय नहीं है? हाँ, अवश्य है। कुछ दिन निर्जन में साधना करनी चाहिए। निर्जन में साधना करने पर भक्ति प्राप्त होती है, ज्ञान-लाभ होता है; फिर जाकर गृहस्थ करो तो दोष नहीं है। जब निर्जन में साधना करेगा, तब गृहस्थ बिल्कुल अलग पड़ा रहेगा। तब जैसे भी हो, स्त्री-पुत्र-कन्या, माता-पिता, भाई-भगिनी, आत्मीय कुटुम्बी कोई भी पास न रहे। निर्जन में साधना के समय विचार करे, 'मेरा कोई नहीं है, ईश्वर ही मेरा सर्वस्व है।' और रो-रो कर उनके निकट ज्ञान-भक्ति के लिए प्रार्थना करे।

''यदि पूछो कितने दिन गृहस्थ छोड़कर निर्जन में रहूँगा? वह तो यदि कोई इस प्रकार एक दिन रहे, वह भी अच्छा है, तीन दिन रहे तो और भी भला है, अथवा बारह दिन, एक मास, तीन मास, एक वर्ष, जो जितना कर सके। ज्ञान-भक्ति प्राप्त करके संसार करने पर फिर अधिक भय नहीं है।''

[श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत-1, संस्करण 1998, पृ० 142]

ठाकुर आगे कह रहे हैं :

''... गृहस्थ में रहकर साधना करना बड़ा कठिन है। बहुत-सी अड़चनें हैं।... रोग, शोक, दारिद्रय और स्त्री के संग अमेल, लड़के अवज्ञाकारी, मूर्ख, गँवार।... अत: जब अवसर मिले, किसी निर्जन स्थान पर जाकर रहोगे...''

[श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत-1, संस्करण 1998, पृ० 155]

निर्जन में जाकर विचार करना कितना आवश्यक है! देखो ना! सांसारिक सभी वस्तुओं को, सुखों को अपने लिए, अपने परिवार के लिए प्राप्त करना मनुष्य की सहज वासना है। उन्हें पाने के लिए ही वह निरन्तर दौड़ता रहता है। फिर प्राप्त सभी वस्तुएँ वा जिनके साथ उसका सम्बन्ध है, वे सभी जन 'मेरे पास रहें, मेरे ही बने रहें', यही कामना रहती है। कभी ऐसा न हो तो घोर दु:ख। यह दु:ख मनुष्य के मन को विचलित न कर दे, इसीलिए निर्जन में जाकर सत्-असत् विचार, नित्य-अनित्य विचार अति आवश्यक है।

विचार करने पर ही ज्ञात होगा कि पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, बन्धु-बान्धव, बंगला-गाड़ी, धन-सम्पत्ति, नौकरी-कारोबार, पदवी-प्रतिष्ठा, मान-सम्मान— इनमें से कुछ भी, कोई भी नित्य रहने वाले नहीं हैं। एक-न-एक दिन इनके साथ वियोग अवश्यम्भावी है। मेरी यह देह, जो मुझे इतनी प्रिय है, यही परिवर्तनशील है, अनित्य है, नाशवान है। विचार करते-करते मन में होता है— फिर जागतिक वस्तुओं, सम्बन्धों से ही मोह क्यों रखूँ? ईश्वर ही मेरा अनन्तकाल का बन्धु है, उनमें ही पूरा मन क्यों न दूँ? फिर संसार के सब काम क्यों न छोड़ दूँ?'

ऐसा ही प्रश्न एकजन भक्त ने ठाकुर से पूछा था।

एकजन भक्त— जितने दिन वे न प्राप्त हों, उतने दिन क्या सब कर्म-त्याग करें?

श्रीरामकृष्ण— नहीं, कर्म-त्याग क्यों करोगे? ईश्वर का चिन्तन, उनका नाम-गुण-गान, नित्यकर्म— ये समस्त करने होंगे।

ब्राह्म भक्त— संसार के कर्म? विषय कर्म?

श्रीरामकृष्ण— हाँ, वह भी करोगे, गृहस्थ चलाने के लिए जितना प्रयोजनीय है। किन्तु रो-रो कर निर्जन में उनके निकट प्रार्थना करनी होगी, जिससे ये समस्त कर्म निष्काम भाव से किए जाएँ। और कहोगे, 'हे ईश्वर, मेरे विषय-कर्म कम कर दो, क्योंकि हे प्रभु, देखता हूँ कि अधिक कर्मों में जड़ित हो जाने पर तुम्हें भूल जाता हूँ। मन में सोचता हूँ, निष्काम कर्म कर रहा हूँ, किन्तु सकाम हो जाता है।'

[श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत-1, संस्करण 1998, पृ० 67]

आगे प्रश्न उपस्थित होता है कि गृहस्थ के कर्तव्य कब तक करने होंगे? एक भक्त सब-जज यह प्रश्न ठाकुर से पूछ रहे हैं :—

सब-जज— हम गृहस्थ हैं, कब तक ये कर्त्तव्य करने होंगे?

श्रीरामकृष्ण— ... लड़कों को बड़ा करना; स्त्री का भरण-पोषण करना, अपने न रहने पर पत्नी के भरण-पोषण के लिए जमा करके रखना होगा। वह यदि न करो, तो तुम निर्दयी हो।

सब-जज— सन्तान-प्रतिपालन कितने दिन?

श्रीरामकृष्ण— बालिग होने तक। पक्षी बड़ा होकर जब अपना भार ले सकता है, तब माँ उसको ढूँग (चोंच) मारती है, निकट आने नहीं देती। *(सब का हास्य)*।

[श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत-1, संस्करण 1998, पृ० 211]

कितना स्पष्ट कर दिया है ठाकुर ने! गृहस्थ में रहते निष्काम भाव से कर्तव्य निभाते रहो; पर मन रखो ईश्वर में, ईश्वर-कार्य में।

ठाकुर ने कहा भी है— जब तक गृहस्थ करो, एक हाथ से संसार को पकड़ो और दूसरे से ईश्वर को पकड़े रखो और समय आने पर अर्थात् लड़का जब कमाने लग जाए और लड़की का विवाह हो जाए तो दोनों हाथों से ईश्वर को पकड़ लो। यही ज्ञान ठाकुर ने हम सभी को दिया।

श्रीरामकृष्ण ने नाना प्रकार से मास्टर महाशय को गृहस्थाश्रम के

उपयुक्त शिक्षा दी और केवल शिक्षा दी हो, ऐसा नहीं, उनसे पालन भी करवाया उत्तम गुरु की न्यायीं।

तो ईश्वर अनन्तकाल के बन्धु हैं। संसार के परिजन दो दिन के हैं— आज हैं, कल नहीं। इस ज्ञान से संसार में रहना ही है यथार्थ गृहस्थ-धर्म।

यही श्री म करते रहे आजीवन। गृहस्थ-कार्य निभाने के साथ-साथ वे जीवन-भर ठाकुर-कार्य में, ठाकुर-वाणी के प्रचार-प्रसारार्थ कथामृत-लेखन, प्रकाशन में लगे रहे— लोकसंग्रहार्थ।

महापुरुषों का जीवन ही होता है लोकसंग्रहार्थ। श्रीकृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं :

लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि। [गीता : 3/20]

[लोक संग्रह को देखते हुए भी तुझे कर्म करना ही चाहिए।]

●

8

Thakur and the Gita

— Amal Gupta*

द्वापर में जो थे कृष्ण, वे ही सच्चिदानन्द इस युग में अवतरित हुए श्रीरामकृष्ण रूप में। सर्वशास्त्रों का सार— गीता, ठाकुर का गीतामय जीवन, उनका त्याग, उनकी कथा एवं उनके जीवन का आँखों देखा, कानों सुना वर्णन प्रस्तुत करता श्री म का कथामृत— ये सब हैं इस सुलेख में।

Prologue

Thakur: "Don't you read the *Gita*?"

Shri Ma: "Yes, sir."

Thakur: "Have you a copy of the book?"

Shri Ma: "Yes, sir."

Thakur: "**It contains the essence of all the scriptures**."

[*TheGospel of Shri Ramakrishna*, p. 849]

That was a conversation between Shri Ramakrishna, or

* **Amal Gupta**, is a member of the New York Vedanta Society and a life-member of RMIC, Golpark, he lives in Boston, USA.

'Thakur' and Mahendra Nath Gupta or 'Shri Ma', who later created *The Gospel of Shri Ramakrishna.* The day was *Vijaya Dashami*, October 18, 1885.

Here's another conversation, which I once had with a highly educated friend, a Ph.D. and an intellectual type. When he visited us once, he noticed a large photo of Thakur Maa Sarada and Swamiji in our shrine. He then, somewhat incredulously, asked me: "आप इनकी पूजा करते हैं?" (Do you worship them?) ''ये भगवान तो नही हैं?'' (He isn't God. Is he?)

Puzzled by his question and remark, I kept mum not knowing exactly what to say; but he continued: ''हम तो घर में कृष्ण भगवान की पूजा करते हैं।'' (At our home, we worship Krishna Bhagavan.)

The two conversations had lasting impressions on me. So, I'll touch upon just two points in this write-up:

1. Thakur's Divinity, and 2. *Gita, an essence of all scriptures.*

Gita and Thakur's Gospel

First, a few words about *Gita.*

Ved Vyasa (Badarayana or Shri Krishna Dvaipayan) composed the *Mahabharata* 500 to 600 years before Christ. *Mahabharata*'s 700 verses from its 18 chapters— 25 to 42 of *Book 6* or the *Bhishma Parva* constitute the *Gita.* It's the conversation that takes place at Kurukshetra between God-Incarnate Shri Krishna and His friend and disciple Arjuna. Witnessing his close relatives and friends in the Kaurav army whom he has to fight and kill, Arjuna becomes emotional and declines to fight. And so, Shri Krishna, who was Arjuna's charioteer too, tries to calm him down by teaching him practical lessons on one's duties in life.

Twenty-five hundred years later, Thakur too used to have

conversations with His devotees including Shri M almost everyday. He would talk on life's purpose and duties, and other spiritual topics. Shri M would jot them down every night in his dairy. After Thakur's *Maha-Samadhi*, Shri M published those notes in a Bengali book, *Kathamrita* (कथामृत). It was later translated into English as the *Gospel of Shri Ramakrishna and into Hindi with the name 'Vachanamrita'.**

Divine messages take time to spread

For several thousand years, Hindus have been worshiping Shri Krishna as a full-Avatar (पूर्णावतार). Thakur is nowhere near such a stature – not yet. Nonetheless, Swami Vivekananda, in the Pranam Mantra, which he composed in Thakur's honour, mentioned Him as Avatar-Varishthaya (अवतार वरिष्ठाय)— the greatest among all Avatars. Most of Thakur's devotees do revere Him as an Avatara. But many don't. Frequently, we notice authors mentioning Thakur as 'a saint', 'a great saint of Bengal', or a '19th Century Indian saint', and similar emotive phrases; lately, some even have denigrated Him in their writings and talks!! But there is a stark difference between a 'saint' and an 'Avatara'! Nonetheless, these misgivings are perfectly normal. For, in Thakur's own words: "Ordinary people do not recognize the advent of an Incarnation of God . . . That Rama was both Brahman Absolute and a perfect Incarnation of God in human form was known only to twelve rishis."(*Ibid.,* p.189).

The world took several centuries to accept Buddha and Jesus as Incarnations. In that regard, it's only 130 years since Thakur concluded His *latest Lila* in 1886. About two decades

* The original Kathamrita in Bengali in five parts has now (word for word) been translated and published by Sri Ma Trust in five parts both in English and Hindi under the same original title "Sri Sri Ramakrishna Kathamrita."

after that, Shri Aurobindo, a great yogi and an original thinker of the 20th century wrote: "The work that was begun at Dakshineshwar is far from finished. It is not even understood." (*SABCL*, Vol. 17, p. 98 & Vol. 2, p. 412). And again, "The world could not bear a second birth like that of Ramakrishna in 500 years. The mass of thought that He has left has first to be transformed into **experience** . . . Until that is done, what right have we to ask for more? What could we do with more?"

[Cited: *The Sayings of Ramakrishna*, p. 11, *Introduction* by Swami Pavitrananda, Vedanta Society of New York]

"Gita – an essence of all scriptures"

By the remark "*Gita contains essence of all the scriptures*", Thakur had meant **experience,**or **Self-realization,** simply stated, **seeing God face-to-face**. On seeing God, He lamented once saying, "Believe my words when I say that God can be seen. But ah! To whom am I saying these words? Who will believe me?"

[*The Gospel of Shri Ramakrishna*, p. 625]

Closely reviewing the *Gita*, we find that Ved Vyasa had nicely organized it into eighteen chapters. Each chapter teaches some kind of Yoga. Thus, Chapter 2 is Samkhya Yoga, Chapter 3 Karma Yoga, and Chapter 4 Jnana Yoga. Then comes the Raja Yoga in Chapter 9, followed by Bhakti Yoga in Chapter 12.

The word 'Yoga' has been grossly misunderstood lately. What is Yoga? Literally, it means to 'join'. Join what? In all Hindu scriptures including the *Gita's* context, it means joining the human with the Divine, or bringing humans closer to the Divine.More precisely, teaching them **to see God face-to-face.** So, although Shri Krishna teaches Arjuna some lofty

philosophy in all the *Gita*, he also shows His own Divine form to Arjuna. *Gita's* Chapter 11, Vishva-Roopa-Darshan-Yoga describes that account.

Thakur on Gita's essence

So, seeing God is the essence of the Hindu Dharma; more correctly, the Sanatan Dharma and all its scriptures. And Thakur focused all His spiritual practices on that single purpose— **seeing God face-to-face**. No philosophy, no theory, no big talk, no lectures, no rituals, and no showy religion. ONLY EXPERIENCE – ONE-ON-ONE, DIRECT . . . IF THERE IS GOD, WE MUST SEE THAT GOD . . . And Thakur indeed saw Mother Bhavatarini of Dakshineshwar, one of the many forms of the Divine Mother. Not once but many times. Not in dreams, or in mere visions, but FACE TO FACE. That super-conscious state of Thakur's seeing God, called 'Samadhi' in Yoga's language, has been captured in photos for the first time in human history. AND WHAT HE SAW AND WHAT HE EXPERIENCED, HE TAUGHT HIS DEVOTEES. Furthermore, just as Shri Krishna had showed Arjuna His Divine form, Thakur also revealed His Divine form to His devotees, to dispel all doubts from their minds. That blessed day was January 1, 1886, known today as the *Kalpataru Day*.

[Ref: *Shri Ramakrishna the Great Master,*Vol. II, pp. 1023–1027]

Gita, being 'essence of all Hindu scriptures' contains a profound philosophy. Swami Vivekananda called *Gita* the 'last of the *Upanishads*', and 'a bouquet composed of the beautiful flowers of spiritual truths collected from the *Upanishads.'* (*Complete Works*, Vol. 2, p. 189). And again, 'it is the best commentary we have on the *Vedanta* philosophy.' (*Ibid.*, p. 292)Without good and accurate interpretation of that

philosophy it's not easy to understand *Gita*.

Thakur had very little formal schooling— hardly upto the first or second grade in a village primary school. So, He never read *Gita* or any scriptures. In His own words: "Really and truly I don't feel sorry in the least that I haven't read the Vedânta or the other scriptures . . . One should learn the essence and then dive deep in order to realize God . . .And what is the essence of the Gitâ? It is what you get by repeating the word ten times. Then it is reversed into, *'Tagi'* (तागी or त्यागी), which refers to renunciation . . . The essence of the Gitâ is: 'O man, renounce everything and practise spiritual discipline for the realization of God.'" (*The Gospel of Shri Ramakrishna*, pp. 255, 694). Thus, unlike *Gita's* teachings, Thakur's teachings are so easy for everyone to understand.

Thakur's Renunciation

In sum then, Thakur taught REALIZATION as the essence of all scriptures. And how to get realization? By renouncing. Renouncing what?— EVERYTHING. Thakur once said that he had renounced EVERYTHING EXCEPT TRUTHFULNESS.

"A man cannot realize God unless he renounces EVERYTHING mentally. A sâdhu cannot lay things up. 'Birds and wandering monks do not make provision for the morrow.' Such is the state of my mind." (*Ibid.*, p. 647). And again, "If a man leads a householder's life, he must have unflagging devotion to TRUTH. God can be realized through TRUTH alone. (*Ibid.*, p. 418). In other words, we have to renounce EVERYTING but not TRUTHFULNESS.

Accounts of Thakur's RENOUNCING EVERYTHING are out of the ordinary. In His own words: "Once, sitting on the bank of the Ganges near the Panchavati, holding a rupee in one

hand and clay in the other, I discriminated, 'The rupee is the clay – the clay is verily the rupee, and the rupee is verily the clay', and then threw the rupee into the river." (*Ibid.*, p. 572)

With regard to money, Thakur echoes *Gita*: "You no doubt need money for your worldly life; but don't worry too much about it . . . This is what the Gitâ describes as 'accepting what comes of its own accord'." (*Ibid.*, p. 506). Swami Vivekananda also beautifully expressed this idea: "Fortune is like a flirt; she cares not for him who wants her, but she is at the feet of him who does not care for her. Money comes and showers itself upon one who does not care for it . . . They always come to the Master. The slave never gets anything."

[*Complete Works*, Vol. 5, p. 251]

A 'don't care' and strong-willed mindset usually accompany true renunciation. One such incident in Thakur's own words: "Once Kumar Singh (Thakur's Sikh devotee) gave a feast to the sadhus and invited me too. I found a great many holy men assembled there. When I sat down for the meal, several sadhus asked me about myself. At once I felt like leaving them and sitting alone. I wondered why they should bother about all that. The sadhus took their seats. I began to eat before they had started. I heard several of them remark, 'Oh! What sort of man is this?' (अरे! ये क्या है रे?)"

[*The Gospel of Shri Ramakrishna*, p. 236]

Here's another example of Thakur's 'don't care' attitude. Once Hriday, His nephew, did something objectionable. Dakshineshwar Temple manager didn't like that and ordered Hriday to leave the temple premises. But the manager's

assistant made a mistake, came to Thakur and told Him to leave. Instantly Thakur started walking towards the temple gate. No question asked. What happened? Why was he asked to leave? Where would he go? No clothes or personal belonging. Nothing. But before He was gone, the manager realized the mistake, rushed towards the temple gate, apologized to Him— "No! No! Not you! I ordered Hriday to leave!"— and brought Him back to His room. Thakur came back, told Hriday in His child-like manner, "Oh, Hridu! Not me, they want you to leave!"

Of many instances of Thakur's practice of RENUNCIATION, Holy Mother narrated these two remarkable incidents: "Once there was a mistake in the accounts relating to the salary of Thakur. I asked Him to talk to the Temple Manager about it. But he said, 'What a shame! Shall I bother myself about accounts?' "

[*The Gospel of the Holy Mother*, p. 115]

The Holy Mother once narrated this profound incident to Her disciple Swami Arupananda (*Ibid.,* pp. 124-25): "One day, after lunch in my room at the Nahabat, I gave Thakur some spices (ajwain अजवाइन) to chew, wrapped in a piece of paper to take to His room. Thakur proceeded towards his room; but instead of going there, He seemed to be in a trance and went straight towards the embankment of the Ganges; Seeing Him going towards Ganges, I panicked since the river was full to the brim. Fortunately, I saw a priest of the Kali temple coming. I sent him to call Hriday who immediately ran to the river and brought Thakur back to His room. A moment more, and He would have dropped into the Ganges!

Arupananda : Why did He go towards the river?

Mother : Because I put a few spices in His hand, He could not find his way. A holy man must not save anything for the morrow. Renunciation alone was His splendor. HIS RENUNCIATION WAS ONE HUNDRED PERCENT COMPLETE!!

Epilogue

An Avatara is an embodiment of pure existence (सत्), pure consciousness (चित्), and bliss (आनन्द). He or She is all knowing, capable of envisioning the future.

Did Thakur envision what was awaiting humanity in the 21st century? Increasing spiritual bankruptcy? Subjugation and dishonour of women all over the world? War and terrorism? Merciless killings of innocent people over religious fanaticism? Abject poverty and stark inequality around the world?

Perhaps He did. Or else, why would He say? "I will stay for a hundred years in the hearts of devotees, and then come again?" (*Ibid.,* p. 123). "I shall have to be born once more. Therefore I am not giving all knowledge to my companions."

[*The Gospel of Shri Ramakrishna,* p. 359]

Isn't that what Shri Krishna too said in the *Gita's* famous यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत verses 4.7 and 4.8?"Whenever there is decline of Dharma (धर्म), and rise of Adharma (अधर्म), I body myself forth for the protection of the virtuous, for the destruction of the wicked."

Is the time not ripe yet for His come back??

●

9

Shri Ramakrishna on Bhagavad Gita

— Nitin Nanda

Shri Ramakrishna, the God-incarnate in the age of Kali, demonstrated the verses of the Bhagavad Gita, the Vedas and the Upanishads in his life. His life was a story of religion in practice. As per Mahatma Gandhi, "His sayings are not those of a mere learned man but they are pages from the Book of Life." In Shri Shri Ramakrishna Kathamrita, we not only find the manifestation of Gita verses in his life but he also teaches his disciples the exact meaning of these verses vis-à-vis present day times.

Below are given some of the verses of Bhagavad Gita in relevance to the teachings of Shri Ramakrishna from the Kathamrita.

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥ [गीता : 6/29]

[His mind being harmonized by yoga, he sees himself in all beings and all beings in himself; he sees the same in all.]

In Volume I, section-I, ch.-6 of Shri Shri Ramakrishna

Kathamrita, Shri Ramakrishna explains the exact meaning of this verse and how to use it in our daily life. He is saying to Narendra, Swami Vivekananda –

Shri Ramakrishna (*smiling*)— "No, my child, you mustn't go that far. Know that God is in all beings. But you must mix with the good and keep a distance from the bad. God is present even in a tiger, but surely you can't hug him for that reason. *(Laughter.)* If you say, 'The tiger is also God, why should I run away?' the answer is, 'He who says, "Run away!" is also God. Why should you not listen to him?"

"Listen to a story:

"A sadhu lived in a forest. He had a number of disciples. He had taught them, 'Narayana is in all beings. Knowing this, offer salutations to all.' One day a disciple went out to collect firewood for the sacrificial fire. Suddenly there was a shout, 'Run! Run away wherever you can! A mad elephant is coming!' Everyone ran except this disciple. He reasoned, There is Narayana in the elephant, too, so why should I run away? Thinking this, he stood still and saluted the elephant. He started to offer prayers. The mahaavat (elephant driver) shouted, 'Run away, run away!' Still the disciple did not move. Finally the elephant came and seized him with its trunk. It threw him on the ground, and then went on its way. The disciple, cut and bruised, lay unconscious on the ground.

"Hearing what had happened, his guru and brother disciples came and carried him back to the ashrama and applied medications. After some time, when he came to senses, one of them asked, 'Why didn't you move away when you heard that a mad elephant was coming?' He answered, 'Because our master told us that Narayana Himself is present in all living creatures. Seeing the elephant coming as Narayana, I did not leave.' His guru replied, 'My son, indeed

it is true that the elephant as Narayana was coming – but, my child, Narayana as the mahaavat warned you! If everybody is Narayana, why did you not listen to the mahaavat Narayana? You should have listened to the driver's words.'"

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥ [गीता : 5/5]

[The state reached by the jnani is also attained by the yogi. He indeed sees rightly who sees that jnana and yoga are one.]

In Shri Shri Ramakrishna Kathamrita, on 27 October 1882, Shri Ramakrishna says:

"The same Being whom jnanis call Brahman (the Absolute) is called Atman (Universal Soul) by yogis and Bhagavan (Personal God with divine attributes) by devotees.

"Jnanis say the same as the Vedantists. But devotees accept all the states of consciousness. They look upon the waking state as real, and they do not consider the external world a dream. Devotees say that this world is the glory of God. The sky, the stars, the sun, the moon, the mountains, the ocean, men, birds, and beasts – all are created by God. These are His 'riches.' He is both within the core of the heart and He is without. The superior devotee says, 'God Himself has become the twenty-four categories[1] – living beings and the universe.' The devotee does not want to become sugar, but wants to taste it. (*All laugh.*)

1 The twenty-four categories or cosmic principles enunciated in the Samkhya Philosophy are: *mahat*, cosmic intelligence; *buddhi*, the discriminating faculty; *ahamkara*, the sense of ego; *manas*/mind-stuff/*chitta*, the recording faculty; five organs of sense-perception (hearing, touch, sight, taste, smell); five organs of action (hands, feet, speech, organ of excretion, organ of generation); five *tanmatras* (sound-potential, touch-potential, sight-potential, taste-potential, smell-potential), the finer materials of the gross elements which, combining and recombining produce the five gross elements (ether/akasha/space, air, fire, water, and earth).

"The yogi[2] seeks to see the Paramatman. His aim is union of the embodied soul with the Supreme Self.[3] The yogi withdraws his mind from worldly objects and tries to fix it on the Paramatman. So to begin with, he meditates on Him in solitude, in a fixed posture, with a concentrated mind.

"But It is one and the same Substance. The difference is only in name. He who is Brahman is Himself the Atman and also God. He is the Brahman of the Brahmajnani,[4] the Paramatman of the yogi,[5] and the Lord of the devotee."[6]

"Baffled by Her delusion, man has become worldly. Ramprasad says, 'You have given me this mind and have turned it, with a wink, to seek enjoyment in the world.'"

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ [गीता : 12/4]

[Having restrained the multitude of senses, even-minded in everything, rejoicing in the welfare of all beings, they indeed come to Me.]

Again on 27 October 1882, Shri Ramakrishna engaged in welfare of all beings is making effort for patch up between Vijay and Keshab.

They are all eating puffed rice with coconut that they have kept in the folds of their clothes. It is a festivity of joy. Keshab had arranged for the puffed rice. At this moment Thakur sees that Vijay and Keshab are not at ease in each other's company. Now he will make them compromise, as if they are two innocent boys. He is engaged in the welfare of all beings.

Shri Ramakrishna (*to Keshab*)— "Look, Vijay is here. Your

2 The aspirant who seeks union with God through raja yoga, the path of meditation.
3 Paramatman. 4 Monist.
5 The seeker of union. 6 Dualist.

disputes and differences are like battles between Rama and Shiva. (*Laughter.*) Shiva is Rama's guru. They had a fight, and then they made up. But the fighting and gibberish between Shiva's ghosts and Rama's monkeys has no end! (*Loud laughter.*)

"You are the same flesh and blood. Yet, you know, such things can't be avoided. Lav and Kush (Rama's sons) fought a war with their father. And, you know, a mother and her daughter observe Tuesday's fast and prayers separately. It's as if the good fortune of the mother and the daughter were different. In fact, the mother's Tuesday observance brings good fortune to the daughter, just as her daughter's separate observance does for her mother. In the same way, Keshab has a samaj (religious society) of his own and Vijay thinks he must have a separate samaj. (*Laughter.*) Still, it is necessary.

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव॥ [गीता : 11/43]

[You are the Father of the moving and the unmoving universe. You are adored by this world, You are the revered Guru. In the three worlds there is none who can surpass you. You, O Being of incomparable power!]

At another instance, Shri Ramakrishna says on 27 October 1882:

All are rejoicing. Thakur says to Keshab: "You do not examine the nature of your disciples before accepting them. That's why they break away like this.

"Men are the same in appearance, but they differ in

nature. In some, sattvaguna[7] dominates, in others rajoguna,[8] and again in others tamoguna.[9] Puli (a kind of stuffed sweet) may all have the same look. But some contain sweetened condensed milk, some the kernel of coconut sweetened by treacle or sugar, and some have kalai pulse boiled without any sweetening added. (*All laugh.*)

"Do you know what I think about it? I go on eating and drinking, and the Divine Mother knows all. There are three words that prick me – guru, doer, and father.

"There is only one Guru, who is Sat-chit-aananda. It is Sat-chit-aananda alone who teaches. For my part, I feel like a child. You can find lakhs of men as gurus. Everyone wants to be a guru. Who wants to be a disciple?

"Teaching mankind is very difficult. It is only when God manifests and gives a commission that it is possible. Narada, Sukadeva, and others received that command to teach. Sankaracharya also was commissioned by God. If you are not commissioned, who will listen to you? You know the minds of Calcutta people. So long as there is fire, the milk continues to boil. As soon as the fire is withdrawn, it stops boiling.

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥ [गीता : 3/19]

[Therefore, constantly perform your own duties without attachment; for by doing duties without attachment, man verily obtains the Supreme.]

Again on 27 October 1882, Shri Ramakrishna talks about work without expectation of any reward to a Brahmo Devotee:

7 Qualities that lead Godward.

8 Qualities that incline one to multiply work and duty.

9 Qualities that cause ignorance and laziness and turn the mind away from God.

A Brahmo devotee— "But what about worldly work? Worldly affairs?"

Shri Ramakrishna— "Yes, you should attend to that too, as much as is necessary to run the household. But you must cry in a lonely corner and pray to God so that you do all these works selflessly.[10] And you should pray, 'O Lord, please lessen my worldly work, because O Lord, I see that when I am engrossed in too much work, I forget You. I think that I'm doing the work in a selfless way, but it turns out to be with a motive.[11] A desire for name and fame can crop up when I increase my giving in charity and distributing free meals.'

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥ [गीता : 4/22]

[He who is satisfied with gain which comes of its own accord, who is free from duality and does not envy, who is steady in both success and failure, is never entangled, although performing actions.]

In Volume II of Shri Shri Ramakrishna Kathamrita, 14 December 1883, Shri Ramakrishna explains to a devotee:

A Particular Devotee— "Everybody is trying to earn money. I see it. Hasn't Keshab Sen given away his daughter in marriage to a prince?"

Shri Ramakrishna— "It is different with Keshab. To a true devotee, the Lord provides everything without any effort on his part. The real son of a king gets a monthly allowance automatically. I am not talking of pleaders and advocates who earn money by becoming slaves to others and working so hard. I say, 'One should be the real son of the king.' He who

10 Nishkama.\
11 Sakama.

has no desire, who never asks for money, gets it automatically. The Gita says: 'That which comes without effort.'

"The real brahmin is he who has no desire – he accepts food even from a 'dome'. He does not ask for anything. Everything comes to him by itself."

•

एवमुक्त्वार्जुनः सङ्ख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः॥ [गीताः 1/47]

10

How I co-relate with Shri Bhagvad Gita

— Sunil Bansal

लेखक को अपने जीवन की प्रत्येक समस्या का समाधान मिला श्रीमद्भगवत् गीता में। गीता में वर्णित भगवान श्रीकृष्ण की वाणी उन्हें कैसे पग-पग पर सम्भालती रही, इसी का वर्णन है इस लेख में।

I was fortunate to hear my first discourse on Shri Bhagvad Gita in 2001 when I was quite young and in the fourth year of my job in software development after passing out from college. I had got married also almost one year ago. It was a critical stage of my life wherein various thoughts were going through my mind related to my career, challenges, my present and future etc. I learnt some important lessons in that discourse and since then found that Shri Bhagvad Gita has given me guidance in every aspect of my life. If I consider from different point of views like spiritual inquiry, work in challenging situations, controlling one's anger in tough situations, intellectual reasoning, cultivating devotion, on achieving happiness, need for protection then it is a complete guide with solutions for all different situations that one comes across in life.

I always had fascination about God as a child and used to think that where can I find God. My small efforts in this regard did not give me direct answer and I felt that God is hiding Himself. However, I felt a great deal of clarity and relief when I read about Lord Krishna describing about His Universal form in Shri Bhagvad Gita. It was a direct and clearest assurance about God's presence directly from God without any complex or round about arguments. This gave me a new way of looking at the world. It has inspired my devotional feelings many a time and I have really loved it.

Lord Krishna says in Gita :

> "Of the Adityas I am Vishnu, of lights I am the radiant sun, of the Maruts I am Marichi, and among the stars I am the moon."[1]
>
> "Of priests, O Arjuna, know Me to be the chief, Brihaspati. Of generals I am Kartikeya, and of bodies of water I am the ocean."[2]
>
> "Of the great sages I am Bhrigu; of vibrations I am the transcendental Om. Of sacrifices I am the chanting of the holy names and of immovable things I am the Himalaya."[3]
>
> "Of purifiers I am the wind, of the wielders of weapons I am Rama, of fishes I am the shark, and of flowing rivers I am the Ganga." [4]

There have been many situations in my life when I have felt bad or angry due to someone's behavior or other issues. In such troubled situations sometimes I would have felt strong

---

1 Chapter X. 21

2 Chapter X. 24

3 Chapter X. 25

4 Chapter X. 31

dislike of certain things or persons; had I acted under the influence of such feelings then there would have been even more troubles. In such tough situations I always get reminded of the beautiful logic given by Lord Krishna in the following verses and get hold of myself to act wisely. Further it clearly puts the responsibility of our situations back on our mind thus reminding us to take care of our minds if we want to be happy and peaceful.

> "While contemplating on the objects of the senses, a person develops attachment for them, and from such attachment desires develop, from desires anger arises."[5]
>
> From anger, complete delusion arises, and from delusion loss of memory. When memory is bewildered, intelligence is lost, and when intelligence is lost the person is destroyed." [6]
>
> "One must deliver himself with the help of mind, and not degrade himself. The mind is the friend of the conditioned soul, and his enemy as well."[7]

Shri Bhagvad Gita had been an excellent source of knowledge and guidance for me in my field of work in software industry during the last 18 years. There had been challenging assignments, very high pressure situations with lot at stake that I had to handle over the years. There had been challenges in forming teams and handling people. Whether to convince myself to keep on doing good work untiringly in spite of unfavorable results sometimes or to convince and lead others in the field of work, the following verses have always helped me.

---

5 Chapter II. 62

6 Chapter II. 63

7 Chapter VI. 5

> "He who finds in the midst of intense activity the greatest rest and in the midst of the greatest rest intense activity , he is a Yogi."[8]
>
> "One who performs his duty without association with the modes of material nature, without false ego, with great determination and enthusiasm, and without wavering in success or failure is said to be a worker in the mode of goodness."[9]
>
> "Whatever action a great man performs common men follow. And whatever standards he sets by his exemplary acts, all the world pursues them."[10]

Shri Bhagvad Gita is a great aid in developing the devotion towards God. The devotional process described in it is very simple and it stresses on the spirit rather than the elaborate fringe activities. Any ordinary person can follow the basic teachings taught by the Lord in Shri Bhagvad Gita and become a devotee. Coming as direct words from the Lord, these also show that the Lord expects simple devotional service done sincerely instead of complicated practices.

> "If one offers Me with love and devotion a leaf, a flower, a fruit or water, I will accept it"[11]
>
> "For one who sees Me everywhere and sees everything in Me, for him I am never lost, nor is he ever lost to Me."[12]

Sometime I wonder about the wonderful talents people have in the world e.g. someone is a great scientist or a great writer

8 Chapter IV. 18
9 Chapter XVIII. 26
10 Chapter III. 21
11 Chapter IX. 26
12 Chapter VI. 30

or a great speaker or a great thinker of modern world or an economist or great politician etc. Some of these greats explain world and situations purely from materialistic and intellectual approach. These cause confusion in my mind. It is like intellectual gymnastics. Here again Shri Bhagvad Gita provides the answer in this verse that every person's core life principles, talents which is behind all the phenomena and development in this world are supplied by Lord although he may not be aware of it.

> "Intelligence, knowledge, freedom from doubt and delusion, forgiveness, truthfulness, control of the senses, control of the mind, happiness and desires, birth, death, fear, fearlessness, nonviolence, equanimity, satisfaction, austerity, charity, fame and infame – all these various qualities of living beings are created by Me alone."[13]

The spiritual practices like Japa, meditation, worship, acts of service, restraining from wrong things and wrong behaviors, striving to do good and develop good qualities is a process that I have been trying to do for many years. During these times, there come questions like what is the ideal? How much needs to be fulfilled? What would be the point where I can feel that I am there? Sometimes one feels that certain thought or action done by one was not right and he feels dejected. Shri Bhagvad Gita brings clarity in such cases by explaining the ideal and helps me to keep on striving for the ideal without stopping.

> "Before giving up this present body, if one is able to tolerate the urges of the material senses and check the force of desire and anger, he is well situated and is happy in this world."[14]

---

13 Chapter X. 4, 5

14 Chapter V. 23

> "Lord Shri Krishna says: O mighty-armed son of Kunti, it is undoubtedly very difficult to curb the restless mind, but it is possible by suitable practice and detachment."[15]
>
> "Lord Shri Krishna said: When a man gives up all desires for sense gratification and when his mind, thus purified, finds satisfaction in self alone then he is called man of steady wisdom."[16]
>
> "One who is not disturbed in mind even amidst all types of miseries, without expectation in happiness, and who is free from attachment, fear and anger, is called a sage of steady mind."[17]
>
> "In the material world, one who is unaffected by whatever good or evil he may obtain, neither praising it nor despising it, is firmly fixed in perfect knowledge."[18]

No matter what one may do, there come times in life when one lands in difficulties, feels helpless or sad. It could be due to mistakes one may have made or the sheer situational challenges that may appear too big or difficult. In such situations, Lord Krishna gives direct assurance very graciously. This acts as a great source of relief for me and helps in renewing my efforts once again.

> Lord Shri Krishna says, "Son of Pritha, one who does good is never overcome by evil neither in this world nor in the next world."[19]
>
> "Even if one commits the most abdominable action, if he is engaged in devotional service he is to be considered

15 Chapter VI. 35
16 Chapter II. 55
17 Chapter II. 56
18 Chapter II. 57
19 Chapter VI. 40

saintly because he is properly situated in his determination."[20]

"He quickly becomes righteous and attains lasting peace. O son of Kunti, declare it boldly that My devotee never perishes." [21]

"Those who always worship Me with exclusive devotion, meditation on My transcendental form – to them I carry what they lack, and I preserve what they have."[22]

"Always think of Me, become my devotee, worship Me and offer your homage unto me. Thus you will come to Me without fail. I promise you this because you are My very dear friend."[23]

Thus I feel and believe that Shri Bhagvad Gita provides me answers for a variety of situations in my life. I pray to the Great Lord of the Universe, Shri Krishna, that He grants me right understanding and takes me to Spiritual enlightenment and goal.
May Lord grant enlightenment and peace to everyone!

●

20 Chapter IX. 30
21 Chapter IX 31
22 Chapter IX 22
23 Chapter XVIII. 65

ठाकुर श्रीरामकृष्ण

|

श्री म

|

स्वामी नित्यात्मानन्द

|

श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता अपने पास आने वाले भक्तों से कहा करतीं—

देखो! ठाकुर तुम्हारे कितने समीप हैं! तुम आपस में एक-दूसरे का हाथ पकड़ो। फिर अन्तिम जन का हाथ पकड़ते हुए कहतीं— देखो, तुम सब का हाथ है मेरे हाथ में, मेरा हाथ है स्वामी नित्यात्मानन्द जी के हाथ में, उनका हाथ है श्री म के हाथ में और श्री म ने पकड़ा है ठाकुर को; तो तुम सब हो ना ठाकुर के पास! कहाँ दूर हैं ठाकुर तुमसे? तुम सब हो ठाकुर के अपने बालक! उनके निजी जन! एक हाथ से ठाकुर को पकड़े रखो कस कर! फिर तुम संसार में गिरोगे नहीं।

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता की यह आश्वस्त वाणी उनके साथ जुड़े ठाकुर-भक्तों का आज भी मंगल कर रही है। उन्हीं की प्रेरणा से उनके साथ जुड़े ठाकुर-भक्त श्री म ट्रस्ट के माध्यम से आज भी ठाकुर-सेवा में लगे हैं।

❖

11

विविधा

1. The Two Pillars

—Pradip Dasgupta

''नरेन्द्र महेन्द्र बने दो खम्भे, माँ-ठाकुर के मन्दिर में'' माँ श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता गाया करती थीं। यही एहसास श्री प्रदीप दासगुप्त के लेख से हो रहा है। तो भी वे द्वितीय स्तम्भ महेन्द्रनाथ (श्री म) के विषय में उनके मॉर्टन स्कूल को लेकर तनिक चिन्तित हैं। आइए, उनके तद्-विषयक विचार जानें।

''He is on a strong foundation, which is built on two 'pillars'.'' A philosophy was the point of discussion and I knew too little about it. It was almost 35 years ago when some moments of discussion catapulted me into another world. I kept listening the 'Chacha-Bhatija' conversation on a summer afternoon in rural Bengal when I visited their house during scheduled yearly leave from my service at the Indian Armed Forces.

Bengal was an epicenter of high spiritual and social practices by lots of Avatars, saints, freedom fighters and even common men. I used to read voraciously the biographies of those personalities during my early childhood. But, regarding the topic of discussion here, I didn't know much about it. So I was merely a listener. The Bhatija here is my brother from my paternal auntie, who is of my age, a little older than me,

while the Chacha is his own uncle.

There were detailed discussions and I was enjoying that in spite of the fact that it was my first visit to the place ever since I had left my home, Bengal on an appointment of combat service. They were so much into it that they never gave much importance to my arrival and both Chacha and Bhatija were fully engrossed in discussing the life and philosophy of the saint. I don't remember the entire discussion but I am carrying the thought of 'pillars and foundation' since then.

Swami Vivekananda and Shri Mahendra Nath Gupta were the two pillars which were talked about. They upheld the spiritual philosophy of Shri Ramkrishna Paramahansa Dev. How they did it was the matter of discussion. Since I had conceived the thought of the foundation and pillars, at a later stage when sufficient possibilities emerged after my combat service on fulfillment of term, I tried to find out about these two pillars first.

The first pillar : Swami Vivekananda

He had been occupying my mind from my early childhood. Every Bengali New year there used to be at least one calendar among many which used to be with the photograph of this great saint. My parents used to select one and adorn a wall in the house with it and every year a new photograph of the saint would add to effulgence of his aura to our room.

There are lots of books on this wandering monk and the most wondering thing was that during my father's retirement his organisation presented him with the entire volume of complete works of Swami Ji in Bengali. I started browsing part of the set at the age of 29. Later, through my association with Ramakrishna Mission, I kept learning more

about this pillar. It goaded me to visit his ancestral house, places he visited or stayed in different parts of India and the Belur Math— a reality today of his dream project, including the room where this young saint stayed and breathed his last. I don't dare to discuss more about his works as I also cannot describe any pillar as its material constitution, ratio, architect and work-manship behind it. But by now I understand, it's really a strong pillar to proliferate his master, being most loved and dependable one among many of his monastic disciples.

The second Pillar : Shri Mahendra Nath Gupta

To begin with, it may not be seemingly so shining or popular as the first one, it is but as robust as the previous one. I knew nothing about him before reading the 'Kathamrita', after 2000 when I was in the 39th year of my age. It is quite obvious that a person wanted to remain behind the veil throughout his life and I know about him so easily? But again with the conceived thought and process of development I started knowing him and felt more and more interested about this domestic disciple who led a life just like a normal man but with immense spiritual aura to ponder. Certainly he was not a normal person. Hence my search began and I tried to learn about this second pillar, may be more intensely than the former. As nothing much was available on him so it became a difficult task.

The very first time when I visited his house (The Kathamrita Bhavan/ Thakur Bari), 13/2, Guruprasad Chaudhury Lane, I found his bed room is just a quarter in size of mine. He remained comfortably there during his entire life, though a little backache at much later stage, may be after 75 years of age, whereas I am not comfortable in my larger room, almost four times bigger than that. Still I have developed a

little back ache sensation sometime in my present age of fifty five.

I cried sitting there in his house fullest to my satisfaction having aura of spiritual vibration in and around the house. I also went around seeing how he lived his life here merrily, how he accommodated his family guests who happened to be numerous on regular basis including monks from Belur and the direct disciples of Thakur. Holy Mother who stayed in his residence for a significant time established an original photograph of Thakur (still available) in his room of worship along with Goddess 'Chandi' (being worshipped on regular basis till date and a celebration during Durga Puja every year) by herself. Thus the house got fulfillment as a temple by itself being too small but so much 'big'.

I also visited the Morton School (now named as Hindu Academy) 50, Raja Ram Mohan Roy Sarani, Kolkata-9, near Armharst street police station and Kolkata City College, another work place of the domestic saint where most of the senior monks of Ramakrishna order got motivated and also got direction as spiritual aspirant from this place which remained a second address of Mahendra Nath Gupta, on the fourth floor of the school building. It was rather a 'monk making factory' for RKM since its inception . The 'Kathamrita' was compiled and shaped here as a book after conceiving and the great work of Shri Paramhansa Dev was undertaken here with the peak of his dedication and devotion towards a spiritual life of highest order. (This is also learnt from the 'autobiography of a Yogi', a biography by Maharshi Yogananda, that his spiritual journey also got initiated from this place.)

The school is carrying the foot-fall of many prominent and eminent monks of Ramkrishna order. The open terrace in

front of the room of the Master Mahashay was the place of meditation for young spiritual aspirants. These young boys who were inspired by the Philosophy of Ramakrishna had initial training of meditation on this terrace under the able guidance of Master Mahashay.

Continuous proof reading of the entire 'Kathamrita ' took place in this very room. 'Kathamrita' is venerated as the holiest book among the followers of Shri Ramakrishna Dev. Continuous reading, discourses on the contents of this Gospel were carried out here on daily basis relentlessly.

My brother handed me over a list of books to be read so that I can participate in such charming discussions as they had. One such book he talked about is 'Shri M Darshan' , which he called the extended 'Kathamrita'.

Eventually I have landed in a place where the part of mammoth work or the remaining unfinished work of this domestic saint had been carried out by one of his student-cum-disciple Shri Jagabandhu who later became a monk of the Ramakrishna Order. Jagabandhu became Swami Nityatmananda having been initiated for direct Sannyas (the only instance in RKM) by the great Mahapurush Maharaj, the second President of the Mission.

At a later stage in 1938, Swami Nityatmananda left the Ramakrishna Mission to carry out the unfinished or remaining task of Shri Mahendra Nath Gupta which remained his mission of life .Having performed a vigorous spiritual austerity in Himalaya's (Rishikesh), the monk now concentrated in fairing his daily diary notes, heard from his Guru Shri M's mouth which were later developed into sixteen volumes of 'Shri M Darshan' in Bengali.

In order to accomplish this great task, Swami

Nityatmanand started living for some time in a year with Smt. Ishwar Devi Gupta and her husband Prof. Dharm Pal Gupta first in Rohtak at Prof. Gupta's Principal-lodge. It was here that 'Shri M. Trust' was created by Swami Nityatmanand ji. Smt. Ishwar Devi started translating Bengali Shri M. Darshan in Hindi and her husband in English from its Hindi version under the guidance of their Guru, Swami Nityatmanand ji. The English version of Shri M. Darshan was named 'M., the Apostle and the Evangelist.'

After his retirement as a Principal, Prof. Gupta shifted to his own house in 579/18-B in Chandigarh along with his family and also Swami Ji.* Shri M. Darshan work continued from here as before. It continued even after the demise of the great monk on July 12, 1975.

Smt. Gupta translated all the sixteen volumes of Shri M. Darshan in Hindi and also five volumes of Kathamrita written by Shri M in Bengali. All these are available with Shri M. Trust. Out of the sixteen volumes of 'M., the Apostle and the Evangelist' translated in English by Prof. D.P. Gupta, twelve have been published. The remaining four are in the process of printing.

The Shri M Trust in sector 18 is just a step away from my present location in Sector 7. The research, editing and publishing work is still being carried out from here by the devotees even after the demise of Prof. D.P. Gupta in 1998 and Smt. Ishwar Devi Gupta in 2002.

I do not want to get this work elaborated here. It's a unique work and I shall certainly fall short of information and also words to narrate this God's play.

* Besides staying most of the time here, he used to visit and stay for about two months at a stretch in a year, at the residences of his other bhakta-disciples at Mandi, Lucknow, Amritsar, Hoshiarpur and also invariably for 2 to 3 months in a year at Tulsi Math, Rishikesh.

But I would like to mention here that, though the robustness of the pillar is intact and it shall remain intact as before but something bothering me most is the room where the great 'Kathamrita ' took shape in the form of a holy book, the room where lots of young boys were motivated with the teachings and life of Thakur and Swami Ji and subsequently they joined the Order. This room is in shambles today in the Morton School, now known as 'Hindu Academy'.

Initially I was under the impression that the great man is still camouflaging himself as he did in the entire 'Kathamrita'. But my heart and soul cried thinking that the place may shortly have no existence due to want of maintenance. I am happy to learn that his original residence, the 'Kathamrita Bhavan' will be taken over by Ramkrishna Mission for all care and maintenance. But I am most concerned and worried about the fate of the Morton School.

The need of the hour is to become aware and also to watch out and wait for some Divine play. I am looking for this to take place any time. This is my belief that Almighty will certainly be taking care of this too. You and me can also be a part of this play if He so desires!

•

2. From Kathamrita to Sri Ma Trust

— Jayadeep Dasgupta

श्री प्रदीप दासगुप्ता के माध्यम से श्री जयदीप दासगुप्ता श्री म ट्रस्ट-परिवार से अभी इसी वर्ष जुड़े हैं। कथामृत पढ़ते-पढ़ते ये किस प्रकार श्री म ट्रस्ट पहुँचे और यहाँ उन्हें सब कैसा लगा, उन्हीं के शब्दों में :

My father was a devout Kali-bhakta and Kali Puja is religiously performed at our house every month on the Amavasya day besides a grand annual Kali Puja. I have grown seeing all this.

It was once during one such annual Kali Puja, when all the members of the family were engaged in Puja in a separate room of the house, I was near the photo of Holy Trio, which includes Thakur Shri Ramakrishna, looking an old man to me, Maa Sarada Devi and Swami Vivekananda. I was then 4-5 years old. I brought some flowers and Prasad and placed them before them, much near to Thakur in spite of the fact that I did not know any of them. It was all spontaneous. This was probably my first attraction for the Old Man. Thakur attracted me the most amongst the three then.

This continued. I often asked my parents about the life

of Thakur, Maa and Swamiji and they told me stories related to them. Still the craze to know more and more continued.

When I was the student of Government Higher Secondary School in Hayuliang near China in Lohit District of Arunachal Pradesh, I was associated with the social activities of Vivekananda Kendra and Ramakrishna Mission. My elder sister joined Vivekananda Kendra Vidyalaya at Along in Arunachal Pradesh as a teacher. At that time I was a student studying in Class-9. During her vacation, she would often bring me some inspiring books of Swami Vivekananda. The more I read Vivekananda, the more the craze to know Shri Ramakrishna increased.

After my school, when I was shifted to Tezpur in Assam for my further studies, I started staying at Vivekananda Kendra Hostel. I was rather happy as the place Tezpur had a Ramakrishna Ashram too and the Kendra had a rich library with a large collection of books related to Shri Ramakrishna, Maa Sarada Devi and Swami Vivekananda.

I read all the 'Complete works of Swami Vivekananda', Life of Thakur, Holy Mother and all other books available relating to them. This only increased my craze of knowing more and more.

It was sometime later that I got to know that if I want to know the real nature of Shri Ramakrishna, I must read Kathamrita in Bengali language. Although I had read the Gospel, I felt the need to read it in Bengali.

I bought Kathamrita in Bengali and read it. It took me around a month to complete it. I read it with determination. It indeed gave me an insight to understand the real nature of Thakur Shri Ramakrishna.

Later on, after my graduation in the year 2000, I decided to come to Kolkata for further studies. One of the reasons to

choose the place was to know and live with Thakur in his 'Lilabhumi'.

After I came to Kolkata in 2000 and stayed for 2 years to complete my post graduation in Mass Communication and Journalism from Jadavpur University, I tried to explore all the places related to Thakur. While in Dakshineshwar, I used to relate the place as described in Kathamrita. Dakshineshwar still seems Vaikuntha to me. I also felt as if I know the place for ages.

It was around that time that the curiosity to know and understand Shri M. increased in me. The person, who can describe Thakur in such a way that we can still find Him around, cannot be an ordinary person. Although I visited Shri M's Samadhi-sthal close to Thakur's, yet I couldn't explore the exact place related to Master Mahashay. Once searching on Internet I chanced upon knowing a little about Sri Ma Trust based in Chandigarh.

In the course of time, I was engaged much in my professional work after I joined Television Journalism and settled in Delhi in 2012. Whenever I found time, I used to rush to Ramakrishna Mission, New Delhi to live in an environment vibrant with Thakur, Maa and Swamiji. It was like peace and be in thoughts, it lifted me to paradise. But such thoughts seldom found place now, as I became busy with my profession. Even then my regular reading from Kathamrita assured me that Thakur is with me.

After remaining in mainstream Journalism for 12 years starting from NDTV in Delhi to Sahara Samay and finally as Bureau Chief of Zee News in Kolkata, I left the job in the year 2012. Now life gave me so many new experiences. One such experience was in the same year, when I met Pradeep Da (Pradeep Das Gupta), a devotee of Thakur, Maa and

Swamiji and actively associated with Sri Ma Trust in Chandigarh, during a month long Defence Correspondents' Course, conducted by the Ministry of Defence, Government of India. We stayed together for a month and often used to share our thoughts on Thakur, Maa and Swamiji, whenever we found time.

After that our relationship became more intense and deep. We were constantly in touch with each other and used to share thoughts on Sri Ma Trust, Swami Nityatmananda, Maa Ishwar Devi Gupta and Papa Dharm Pal Gupta.

It was on the pursuance of Pradeep Da that I visited Kathamrita Bhawan in the year 2013 for the first time and spent some good time there. I also visited Morton School along with Pradeep Da when he came to Kolkata in the year 2015.

Pradeep Da then introduced me to Ishwar Chandra ji, whom I fondly call 'Dadu'. This word has a great impact on me. His regular calls to guide me in my day-to-day life instilled some new thoughts and new techniques of writing. It was his desire that I visited Kathamrita Peeth, which finally took shape in the form of my visit to Chandigarh on 19th March 2016. Finally I met 'Dadu'. The meeting was a very emotional moment, when we hugged each other and I found him the way I used to visualize him.

Although I spent the whole day in Sri Ma Trust at 579, Sector-18B, Chandigarh but the experience I had with Dadu, Nirmal Maa, Naubat Kaku and Pradeep Da was immense. The spiritual experience is beyond expression; I felt charged up in the environment and felt the divine presence around me.

I don't know how long it'll continue and what is the reason behind all these series of events one after the other, but my inner self says something is going to happen in the coming future and some new history is awaiting to be rewritten!

●

The newly added building to Sri Peeth-temple from outside

3. श्री म ट्रस्ट—
परिचय, उद्देश्य और गतिविधियाँ

परिचय

श्री म दर्शन ग्रन्थमाला के प्रणेता स्वामी नित्यात्मानन्द जी श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट (श्री म ट्रस्ट) के संस्थापक हैं।

अपने जीवन में ठाकुर-वाणी का अक्षरशः पालन करने वाले श्री म के पास दीर्घकाल तक रहकर स्वामी नित्यात्मानन्द जी को विश्वास हो गया था कि जगत् के सकल काम-काज करते हुए भी मन से ईश्वर के साथ रहा जा सकता है और यही है शाश्वत शान्ति तथा परमानन्द का सहज, सरल उपाय। परमानन्द की प्राप्ति ही है मनुष्य-जीवन का एकमात्र उद्देश्य। इसी परमानन्द की प्राप्ति जन-जन को हो, इस उद्देश्य से स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज ने अपने प्रथम गुरु श्री म की स्मृति में 12 दिसम्बर सन् 1967 को श्री म ट्रस्ट (श्रीरामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट) को रोहतक में रिजिस्टर करा दिया था। 20 दिसम्बर, सन् 1967 को उन्होंने अपनी इस प्रार्थना के साथ विगत सात वर्षों से चल रहे ट्रस्ट-कार्य को नियमित रूप दे दिया था—

> हे कल्याणमय एवं स्नेहमय परम पिता ठाकुर!
> आज हम जगत् के सभी दुःख-सन्तप्त मनुष्यों के लिए शान्ति तथा आनन्द

स्वरूप आपकी अमृतमयी वाणी का विनम्रभाव से प्रचार एवं प्रसार करने के उद्देश्य से इस श्रीरामकृष्ण 'श्री म प्रकाशन ट्रस्ट' (श्री म ट्रस्ट) की स्थापना करते हैं। स्वामी विवेकानन्द, आचार्य श्री म आदि अपने सांगोपांग पार्षदों तथा श्री श्री माँ के साथ आप हमें आशीर्वाद दें, हमारे साथ नित्य वास करें और मंगलमय दिशा में हमारा सदा मार्ग प्रशस्त करते रहें!

इस निष्काम कर्म तथा नि:स्वार्थ सेवा-भाव से आपके वस्तु-स्वरूप-नरदेह में अवतीर्ण साक्षात् ईश्वर-स्वरूप को हम सतत अनुभव करें!

हमें वास्तविक शान्ति तथा आनन्द की प्राप्ति हो! समस्त ब्रह्माण्ड के सकल जीव प्रशान्त एवं आनन्दमय हों! समग्र ब्रह्माण्ड में शाश्वत तथा अनन्त सुख-शान्ति का चिरस्थायी निवास रहे! ॐ तत् सत्!

उद्देश्य

ठाकुर-वाणी का प्रचार-प्रसार

ठाकुर-वाणी जिसे श्री म ने सुना स्वयं ठाकुर-मुख से, जिसे उन्होंने लिपिबद्ध किया 'कथामृत' के पाँच भागों में बंगला भाषा में, उसे ही श्री म के निज मुख से सुना व श्री म के अपने पालन में देखा स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज ने और फिर उसे ही उन्होंने लिपिबद्ध किया 'श्री म दर्शन' के 16 भागों में बंगला भाषा में। इस ग्रन्थमाला में कथामृत में वर्णित ठाकुर-वाणी की स्वयं श्री म द्वारा व्याख्या के अतिरिक्त ठाकुर, माँ, दक्षिणेश्वर एवं ठाकुर के पार्षदगणों की अनेक नूतन कथाएँ भी श्री म द्वारा कथित हैं।

मूल 'कथामृत' तथा 'श्री म दर्शन' के बंगला से हिन्दी और फिर हिन्दी से अंग्रेज़ी-अनुवाद आदि के माध्यम से ठाकुर-वाणी का प्रकाशन, उसका प्रचार-प्रसार और पालन श्री म ट्रस्ट का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

शिव ज्ञाने जीव-सेवा

ठाकुर-वाणी के प्रकाशन, प्रचार-प्रसार के साथ-साथ दु:खी व आपद्ग्रस्त जनों की शिवज्ञाने सेवा, साधु-सेवा भी श्री म ट्रस्ट का अहम उद्देश्य है।

जन-चैतन्य

इस सबके अतिरिक्त ट्रस्ट का प्रयास रहा है जन-जन को चैतन्य करना। इस दिशा में श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता सदैव प्रयत्नशील रहतीं। अपने आदर्श 'श्री म' की भाँति ही मात्र ठाकुर-वाणी के प्रचार-प्रसार में ही नहीं, वरन् उसके पालन में उनका विश्वास रहा। अपने पास आने वाले हर जन से वे यही कहतीं—

> 'ठाकुर-वाणी को पढ़ लेने से, उस पर चर्चा कर लेने से कुछ नहीं होगा जब तक निज का पालन न हो।'

अपने पास आने वाले प्रत्येक जन की निजी व पारिवारिक समस्या को वे ध्यान से सुनतीं, उसे सुलझाने का वे हर सम्भव प्रयत्न करतीं। ठाकुर, माँ सारदा, श्री म, स्वामी विवेकानन्द और अपने गुरु स्वामी त्यिात्मानन्द जी महाराज के जीवन से दृष्टान्त दे-देकर वे प्रत्येक जन को, जो जहाँ है, वहीं से ऊपर उठातीं।

श्री म ट्रस्ट के प्रति पूरी तरह समर्पित श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता रोगों से जर्जर हो गए शरीर से भी निष्काम सेवा द्वारा ट्रस्ट-कार्य को आगे और आगे ले जाने के लिए प्रति पल तत्पर रहीं।
26 मई, 2002 को बुद्ध पूर्णिमा के दिन वे ठाकुर-गोद में समा गईं।

शकूर बस्ती, दिल्ली में मकान नम्बर WZ-144-1 की अपनी एकमात्र अचल सम्पत्ति भी वे ट्रस्ट के नाम वसीयत कर गईं।

गतिविधियाँ

ठाकुर-वाणी के प्रकाशन-प्रचार-प्रसार की दिशा में अब तक

— कथामृत के सभी पाँच भागों का मूल बंगला से यथावत् हिन्दी-अनुवाद पाँच भागों में ही प्रकाशित हो चुका है। दूसरे संस्करण भी छप चुके हैं। इन सभी के अंग्रेज़ी में भी पाँचों भाग प्रकाश में आ चुके हैं।

— श्री म दर्शन ग्रन्थमाला के सभी 16 भाग बंगला और हिन्दी में प्रकाशित हो चुके हैं और कई भागों के पुनर्संस्करण भी।
इसी ग्रन्थमाला के 'M, the Apostle and the Evangelist' नाम से पहले बारह भागों के अंग्रेज़ी-संस्करण भी छप चुके हैं। शेष चार भाग मुद्रण-प्रकाशन-प्रक्रिया में हैं।

इसके अतिरिक्त

- सन् 1977 में श्री म के जीवन पर 'A Short Life of M.' नाम से अंग्रेज़ी में एक पुस्तिका निकाली गई।
श्री म के जीवन पर संभवत: यह पहली पुस्तक थी।
- सन् 1982 में श्री डी०के० सेन गुप्ता के सहयोग से 'श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत सैंटिनरी मैमोरियल' का सम्पादन-प्रकाशन और
- सन् 1988 में वृहद् ग्रंथ 'Life of M. and Sri Sri Ramakrishna Kathamrita' का लेखन-प्रकाशन सम्पन्न हुआ।
- सन् 2016 में श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के 100वें जन्मदिवस पर 'लाइयाँ ते तोड़ निभाइयाँ' स्मारिका का प्रकाशन किया गया।

इंटरनैट प्रकाशन

श्री म ट्रस्ट के कुछेक अंग्रेज़ी प्रकाशनों के साथ-साथ दक्षिणेश्वर, मॉर्टन स्कूल, कांकुरगाछि एवं ठाकुर व श्री म से जुड़े अन्य तीर्थस्थलों के चित्र भी इंटरनैट वेबसाइट http://www.kathamrita.org पर उपलब्ध हैं।

नूपुर

ठाकुर-भक्तों को ठाकुरवाणी की झलकियाँ निरन्तर मिलती रहें तथा वे ठाकुर, माँ सारदा, ठाकुर-वाणी के संवाहक श्री म, स्वामी विवेकानन्द, श्री म ट्रस्ट के संस्थापक स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज आदि का परिचय पा सकें, इस उद्देश्य से ट्रस्ट की तत्कालीन प्रधान श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता की इच्छानुसार सन् 1994 में स्वामी नित्यात्मानन्द जी के 101वें जन्मदिवस पर 'नूपुर' नाम

से एक स्मारिका निकाली गई। इसे अब वार्षिक पत्रिका के रूप में प्रतिवर्ष प्रकाशित किया जा रहा है।

दैनिक पूजा-अर्चा एवं सत्संग

चण्डीगढ़ के सैक्टर 19-डी में स्थित, श्री म ट्रस्ट की ओर से निर्मित श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत पीठ (श्री पीठ) के ध्यान-घर में दैनिक पूजा-अर्चा के साथ-साथ 'कथामृत', 'श्री म दर्शन' और स्वामी विवेकानन्द-साहित्य का पाठ भी होता है।

चण्डीगढ़-आश्रम के सचिव स्वामी सत्येशानन्द जी की उपस्थिति में यहाँ मासिक सत्संग भी होता है। समय-समय पर बेलुड़ मठ से आए साधु जन भी स्वामी सत्येशानन्द जी की प्रेरणा से इस मासिक सत्संग में आते हैं।।

वार्षिक उत्सव

दैनिक पूजा-अर्चा एवं सत्संग के अतिरिक्त यहाँ निम्न वार्षिक उत्सवों का आयोजन भी नियमित रूप से होता है —

1. कल्पतरु दिवस, 1 जनवरी
2. स्वामी विवेकानन्द जन्मोत्सव
3. श्रीरामकृष्ण परमहंस जन्मोत्सव
4. कथामृत दिवस, 26 फरवरी
5. श्री पीठ स्थापना दिवस
6. बुद्ध पूर्णिमा
7. स्वामी नित्यात्मानन्द जी का जन्मोत्सव, गङ्गा दशहरा
8. गुरु पूर्णिमा
9. श्री म का जन्मोत्सव, नाग पंचमी
10. श्री म ट्रस्ट स्थापना दिवस, 12 दिसम्बर
11. माँ सारदा-जन्मोत्सव

इन उत्सवों में चण्डीगढ़-आश्रम के सचिव स्वामीजी यथासम्भव स्वयं उपस्थित होकर ठाकुर-भक्तों का मार्ग-दर्शन करते हैं।

भक्तों के घरों में साप्ताहिक/मासिक पाठ व सत्संग

श्री पीठ के अतिरिक्त कुछेक सेवक भक्तों के घर भी साप्ताहिक/मासिक सत्संग तथा कथामृत व श्री म दर्शन-पाठ होता है। पूजा-अर्चा के साथ-साथ यह पाठ श्रीमती गुप्ताजी ने ही प्रारम्भ करवाया था जो आज तक पूर्ववत् चल रहा है।

साधु-सेवा

निर्जन-वास के साथ-साथ ठाकुर ने गृहस्थी के लिए ईश्वर-प्राप्ति का, आनन्द प्राप्ति का एक और उपाय बताया है— साधु-सेवा, साधु-संग।

साधु-सेवा के रूप में ट्रस्ट समय-समय पर साधुओं को सेवा-रूप में रुपया भेजता रहता है।

'श्री पीठ' का विस्तारीकरण

'आत्मन: मोक्षार्थं जगत् हिताय च' के उद्देश्य को लेकर चल रहे 'श्री पीठ' का ठाकुर-इच्छा व उन्हीं की कृपा से विस्तारीकरण का कार्य सम्पन्न हो गया।

'श्री म' उत्सव

अधिकाधिक जन ठाकुर रामकृष्ण की वाणी एवं ठाकुर के व्यास श्री म तथा उनकी रचना 'कथामृत' के संग परिचय पा सकें, इस उद्देश्य से सन् 1998 से यह उत्सव यहाँ के श्रीरामकृष्ण मिशन-आश्रम के प्रांगण में प्रतिवर्ष मनाया जाता है।

●

The Present Temple of Sri Peeth from inside

श्री 'म' ट्रस्ट के प्रकाशन

1. श्री म दर्शन

बंगला संस्करण— भाग 1 से 16— स्वामी नित्यात्मानन्द

श्री म दर्शन महाकाव्य में ठाकुर, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द तथा अन्यान्य संन्यासी एवं गृही भक्तों के विषय में नूतन वार्ताएँ हैं। और इसमें है कथामृतकार श्री 'म' द्वारा 'कथामृत' के भाष्य के साथ-साथ उपनिषद्, गीता, चण्डी, पुराण, तन्त्र, बाइबल, कुरान आदि की अभिनव सरल व्याख्या।

2. श्री म दर्शन

हिन्दी संस्करण— भाग 1 से 16

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता द्वारा बंगला से यथावत् हिन्दी-अनुवाद।

3. श्री म दर्शन

अंग्रेज़ी संस्करण— ('M.'— The Apostle and the Evangelist)

श्री 'म' दर्शन ग्रन्थमाला का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता ने 'M.'— The Apostle and the Evangelist नाम से किया है। ट्रस्ट के पास प्रथम बारह भाग तो उपलब्ध भी हैं। शेष चार भाग अभी मुद्रण-प्रकाशन-प्रक्रिया में हैं।

4. Sri Sri Ramakrishna Kathamrita Centenary Memorial

प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता और पद्मश्री डी०के० सेनगुप्ता द्वारा अंग्रेज़ी में सम्पादित वृहद् ग्रन्थ, जिसमें ठाकुर श्रीरामकृष्ण, 'कथामृत', श्री 'म' और 'श्री म दर्शन' पर श्रीरामकृष्ण मिशन के संन्यासियों समेत अनेक गणमान्य विद्वानों के शोधपूर्ण लेख हैं।

5. A Short Life of Sri 'M'

स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज के मन्त्र-शिष्य और श्री म ट्रस्ट के फाऊँडर सैक्रेट्री प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा अंग्रेज़ी में लिखी गई श्री म की संक्षिप्त जीवनी।

6. Life of M. and Sri Sri Ramakrishna Kathamrita

प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा लिखित श्री म के जीवन तथा 'कथामृत' पर शोध प्रबन्ध

7. श्री श्री रामकृष्ण कथामृत

हिन्दी संस्करण— भाग 1 से 5

श्री महेन्द्रनाथ गुप्त ने ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के श्रीमुख-कथित चरितामृत को अवलम्बन करके ठाकुरबाड़ी (कथामृत भवन), कोलकता-700 006 से 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' का (बंगला में) पाँच भागों में प्रणयन एवं प्रकाशन किया था।

इनका बंगला से यथावत् हिन्दी अनुवाद करने में श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता ने भाषा-भाव-शैली— सभी को ऐसे सरल और सहज रूप में संजोया है कि अनुवाद होते हुए भी यह ग्रन्थमाला मूल बंगला का रसास्वादन कराती है।

8. Sri Sri Ramakrishna Kathamrita

English Edition

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के हिन्दी-अनुवाद से प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा कथामृत का अंग्रेज़ी-अनुवाद। सभी पाँचों भाग प्रकाश में आ चुके हैं।

9. नूपुर

वार्षिक स्मारिका

श्री म ट्रस्ट के संस्थापक और हम सब के पूजनीय गुरु महाराज स्वामी नित्यात्मानन्द जी के 101वें जन्मदिन पर उनकी स्मृति में 'नूपुर' नाम से सन् 1994 ईसवी में एक स्मारिका का प्रकाशन हुआ था। उसी स्मारिका ने अब वार्षिक पत्रिका का रूप ले लिया है, जिसमें

अन्य बातों के अतिरिक्त ठाकुर रामकृष्ण परमहंस, माँ सारदा, श्री म, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी नित्यात्मानन्द, 'श्री म दर्शन' आदि के बारे में प्रचुर सामग्री रहती हैं। साथ ही कथामृतकार श्री म के द्वारा 'श्री म दर्शन' में कही उन बातों को भी प्रकाश में लाया जाता है, जो 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' में नहीं हैं।

❖